दुर्गा सप्तशती एक ऐसा वरदान है, एक ऐसा प्रसाद है, जो भी प्राणी इसे ग्रहण कर लेता है। वह प्राणी धन्य हो जाता है। जैसे मछली का जीवन पानी में होता है, जैसे एक वृक्ष का जीवन उसके बीज में होता है, वैसे ही माँ के भक्तों के लिए उनका जीवन, उनके प्राण, दुर्गा सप्तशती में स्थित होते है। इसके हर अध्याय का एक खास और अलग उद्देश्य बताया गया है, और ये देवी के विभिन्न शक्तियां को जागृत करने के 13 ब्रह्मास्त्र कह सकते हैं।

किसी भी प्रकार की चिंता है, किसी भी प्रकार का मानसिक विकार यानी की मानसिक कष्ट है। तो दुर्गा सप्तशती के प्रथम अध्याय के पाठ से इन सभी मानसिक विचारों और दुष्चिंताओं से मुक्ति मीलती है। इंसान की चेतना जागृत होती है और विचारों को सही दिशा मीलती है। किसी भी प्रकार के नेगेटिव विचार आप पर हावी नहीं होते हैं। अतः दुर्गा सप्तशती के पहले अध्याय से आपको हर प्रकार की मानसिक चिंताओं से मुक्ति मीलती है।
https://www.radheradheje.com/durga-saptashati-path-hindi-pdf/

श्री दुर्गा सप्तशती पाठ (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण)

(प्रथम अध्याय)

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

मेधा ऋषि का राजा सुरथ और समाधिको भगवती की महिमा बताते हुए मधु-कैटभ वध का प्रसंग सुनाना

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम् , ऋग्वेदः

स्वरूपम् , श्रीमहाकाली प्रीत्यर्थे प्रथम चरित्र जपे विनियोगः।

प्रथम चरित्र के ब्रह्मा ऋषि, महाकाली देवता, गायत्री छन्द, नन्दा शक्ति, रक्त दन्तिका बीज, अग्नि तत्त्व और ऋग्वेद स्वरूप है। श्रीमहाकाली देवता की प्रसन्नता के लिये प्रथम चरित्र के जप में विनियोग किया जाता है।

ध्यानम्

ॐ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥ १ ॥

भगवान् विष्णु के सो जाने पर मधु और कैटभ को मारने के लिये कमलजन्मा ब्रह्माजी ने जिनका स्तवन किया था, उन महाकाली देवी का मैं सेवन करता हूँ। वे अपने दस हाथों में खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शंख धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे समस्त अंगों में दिव्य आभूषणों से विभूषित हैं । उनके शरीर की कान्ति नीलमणि के समान है तथा वे दस मुख और दस पैरों से युक्त हैं।

ॐ नमश्चण्डिकायै
'ॐ ऐं' मार्कण्डेय उवाच ॥ १ ॥
मार्कण्डेयजी बोले- ॥ १॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।

निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥ २॥

सूर्य के पुत्र सावर्णि जो आठवें मनु कहे जाते हैं, उनकी उत्पत्ति की कथा विस्तार पूर्वक कहता हूँ, सुनो ॥२॥

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः ।
स बभूव महाभागः सावर्णिनयो रवेः ॥ ३॥

सूर्यकुमार महाभाग सावर्णि भगवती महामाया के अनुग्रह से जिस प्रकार मन्वन्तर के स्वामी हुए, वही प्रसंग सुनाता हूँ॥ ३ ॥

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्धवः ।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले ॥ ४॥

पूर्वकालकी बात है, स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नाम के एक राजा थे, जो चैत्रवंशमें उत्पन्न हुए थे। उनका समस्त भूमण्डल पर अधिकार था॥ ४॥

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रा निवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा॥ ५ ॥

वे प्रजा का अपने औरस पुत्रों की भाँति धर्म पूर्वक पालन करते थे; तो भी उस समय कोलाविध्वंसी नाम के क्षत्रिय उनके शत्रु हो गये॥ ५॥

'कोलाविध्वंसी' यह किसी विशेष कुलके क्षत्रियोंकी संज्ञा है। दक्षिणमें 'कोला' नगरी प्रसिद्ध है, वह प्राचीन काल में राजधानी थी। जिन क्षत्रियों ने उस पर आक्रमण करके उसका विध्वंस किया, वे 'कोलाविध्वंसी' कहलाये।

तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ६ ॥

राजा सुरथ की दण्डनीति बड़ी प्रबल थी। उनका शत्रुओं के साथ संग्राम हुआ। यद्यपि कोलाविध्वंसी संख्या में कम थे, तो भी राजा सुरथ युद्ध में उनसे परास्त हो गये॥ ६॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।
खैर आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ ७ ॥

तब वे युद्धभूमि से अपने नगर को लौट आये और केवल अपने देश के राजा होकर रहने लगे (समूची पृथ्वीसे अब उनका अधिकार जाता रहा), किंतु वहाँ भी उन प्रबल शत्रुओं ने उस समय महाभाग राजा सुरथ पर आक्रमण कर दिया॥ ७॥

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ८ ॥

राजा का बल क्षीण हो चला था; इसलिये उनके दुष्ट, बलवान् एवं दुरात्मा मन्त्रियों ने वहाँ उनकी राजधानी में भी राजकीय सेना और खजाने को हथिया लिया॥ ८॥

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः ।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ९ ॥

सुरथका प्रभुत्व नष्ट हो चुका था, इसलिये वे शिकार खेलने के बहाने घोड़े पर सवार हो वहाँ से अकेले ही एक घने जंगलमें चले गये॥ ९॥

स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥ १० ॥

वहाँ उन्होंने विप्रवर मेधा मुनि का आश्रम देखा, जहाँ कितने ही हिंसक जीव [अपनी स्वाभाविक हिंसावृत्ति छोड़कर] परम शान्तभाव से रहते थे। मुनि के बहुत-से शिष्य उस वन की शोभा बढ़ा रहे थे ॥ १० ॥

तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृत।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ ११॥

वहाँ जाने पर मुनि ने उनका सत्कार किया और वे उन मुनिश्रेष्ठ के आश्रम पर इधर उधर विचरते हुए कुछ काल तक रहे ॥ ११ ॥

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वा कृष्टचेतन: ।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥१२॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥ १३॥
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥ १४॥
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्धिः सततं व्ययम्॥ १५॥
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥ १६॥
तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥ १७॥

फिर ममता से आकृष्टचित्त होकर वहाँ इस प्रकार चिन्ता करने लगे -'पूर्वकाल में मेरे पूर्वजों ने जिसका पालन किया था, वही नगर आज मुझसे रहित है । पता नहीं, मेरे दुराचारी भृत्यगण उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते हैं या नहीं। जो सदा मदकी वर्षा करने वाला और शूरवीर था, वह मेरा प्रधान हाथी अब शत्रुओं के अधीन होकर न जाने किन भोगों को भोगता होगा ? जो लोग मेरी कृपा, धन और भोजन पाने से सदा मेरे पीछे-पीछे चलते थे, वे निश्चय ही अब दूसरे राजाओंका अनुसरण करते होंगे।

उन अपव्ययी लोगों के द्वारा सदा खर्च होते रहने के कारण अत्यन्त कष्ट से जमा किया हुआ मेरा वह खजाना खाली हो जायगा ये तथा और भी कई बातें राजा सुरथ निरन्तर सोचते रहते थे। एक दिन उन्होंने वहाँ विप्रवर मेधा के आश्रम के निकट एक वैश्य को देखा और उससे पूछा-'भाई तुम कौन हो ? यहाँ तुम्हारे आने का क्या कारण है? तुम क्यों शोकग्रस्त और अनमने से दिखायी देते हो?' राजा सुरथ का यह प्रेमपूर्वक कहा हुआ वचन सुनकर वैश्य ने विनीत भाव से उन्हें प्रणाम करके कहा- ॥१२-१९॥

सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्॥ १८॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम्॥ १९॥

वैश्य उवाच ॥ २० ॥
वैश्य बोला-॥ २०॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥ २१॥

राजन्! मैं धनियों के कुलमें उत्पन्न एक वैश्य हूँ। मेंरा नाम समाधि है॥ २१ ॥

पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम्॥ २२॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशला कुशलात्मिकाम् ॥ २३॥
प्रवृत्ति स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥ २४॥

मेरे दुष्ट स्त्री-पुत्रों ने धन के लोभ से मुझे घर से बाहर निकाल दिया है। मैं इस समय धन, स्त्री और पुत्रों से वंचित हूँ। मेरे विश्वसनीय बन्धुओं ने मेरा ही धन लेकर मुझे दूर कर दिया है, इसलिये दु:खी होकर मैं वन में चला आया हूँ। यहाँ रहकर मैं इस बात को नहीं जानता कि मेरे पुत्रों की, स्त्री की और स्वजनों की कुशल है या नहीं। इस समय घर में वे कुशल से रहते हैं अथवा उन्हें कोई कष्ट है? ॥ २२- २४॥

कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः॥ २५ ॥

वे मेरे पुत्र कैसे हैं ? क्या वे सदाचारी हैं अथवा दुराचारी हो गये हैं? ॥ २५ ॥

राजोवाच ॥ २६॥
राजा ने पूछा-॥ २६॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥ २७ ॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥ २८॥

जिन लोभी स्त्री-पुत्र आदिने धनके कारण तुम्हें घर से निकाल दिया, उनके प्रति तुम्हारे चित्तमें इतना स्नेह का बन्धन क्यों है॥ २७-२८॥

वैश्य उवाच ॥ २९ ॥
वैश्य बोला-॥ २९ ॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः॥ ३० ॥

आप मेरे विषयमें जैसी बात कहते हैं, वह सब ठीक है॥ ३० ॥

किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मन: ।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥ ३१ ॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः ।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥ ३२ ॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु।
तेषां कृते मे नि:श्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥ ३३॥

किंतु क्या करूँ, मेरा मन निष्ठुरता नहीं धारण करता। जिन्होंने धन के लोभ में पड़कर पिता के प्रति स्नेह, पति के प्रति प्रेम तथा आत्मीयजन के प्रति अनुराग को तिलांजलि दे मुझे घर से निकाल दिया है, उन्हींके प्रति मेरे हृदयमें इतना स्नेह है । महामते ! गुणहीन बन्धुओं के प्रति भी जो मेरा चित्त इस प्रकार प्रेममग्न हो रहा है, यह क्या है- इस बात को मैं जानकर भी नहीं जान पाता। उनके लिये मैं लंबी साँसें ले रहा हूँ और मेरा हृदय अत्यन्त दुःखित हो रहा है ॥ ३१-३३ ॥

करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥ ३४॥

उन लोगों में प्रेम का सर्वथा अभाव है; तो भी उनके प्रति जो मेरा मन निष्ठुर नहीं हो पाता, इसके लिये क्या करू ?॥ ३४॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ३५ ॥
मार्कण्डेयजी कहते हैं-॥ ३५ ॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ।॥ ३६॥
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्ह तेन संविदम्॥ ३७॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ ३८ ॥

ब्रह्मन्! तदनन्तर राजाओंमें श्रेष्ठ सुरथ और वह समाधि नामक वैश्य दोनों साथ-साथ मेधा मुनि की सेवा में उपस्थित हुए और उनके साथ यथायोग्य न्यायानुकूल विनयपूर्ण बर्ताव करके बैठे। तत्पश्चात् वैश्य और राजाने कुछ वार्तालाप आरम्भ किया॥ ३६ - ३८॥

राजोवाच ॥ ३९॥
राजाने कहा-॥३९॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥४०॥

भगवन् मे आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, उसे बताइये॥४० ॥

दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्केष्वखिलेष्वपि ॥ ४१ ॥

मेरा चित्त अपने अधीन न होनेके कारण वह बात मेरे मन को बहुत दुःख देती है। जो राज्य मेरे हाथ से चला गया है, उसमें और उसके सम्पूर्ण अंगों में मेरी ममता बनी हुई है॥ ४१ ॥

जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥ ४२ ॥

मुनिश्रेष्ठ ! यह जानते हुए भी कि वह अब मेरा नहीं है, अज्ञानीकी भाँति मुझे उसके लिये दुःख होता है; यह क्या है? इधर यह वैश्य भी घरसे अपमानित होकर आया है। इसके पुत्र, स्त्री और भृत्यों ने इसे छोड़ दिया है॥ ४२ ॥

स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ॥ ४३ ॥

स्वजनों ने भी इसका परित्याग कर दिया है, तो भी यह उनके प्रति अत्यन्त हार्दिक स्नेह रखता है। इस प्रकार यह तथा में-दोनों ही बहुत दुःखी हैं ॥ ४३ ॥

दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ।
तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि॥ ४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता॥४५॥

जिसमें प्रत्यक्ष दोष देखा गया है, उस विषय के लिये भी हमारे मन में ममता जनित आकर्षण पैदा हो रहा है। महाभाग हम दोनों समझदार हैं; तो भी हममें जो मोह पैदा हुआ है, यह क्या है ? विवेक शून्य पुरुष की भाँति मुझमें और इसमें भी यह मूढ़ता प्रत्यक्ष दिखायी देती है॥ ४४-४५ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ४६॥
ऋषि बोले-॥ ४६ ॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥ ४७॥
विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक्।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥ ४८ ॥

महाभाग! विषयमार्गका ज्ञान सब जीवोंको है। इसी प्रकार विषय भी सबके लिये अलग-अलग हैं, कुछ प्राणी दिन में नहीं देखते और दूसरे रातमें ही नहीं देखते ॥ ४७ - ४८॥

केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ॥ ४९॥

तथा कुछ जीव ऐसे हैं, जो दिन और रात्रिमें भी बराबर ही देखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य समझदार होते हैं; किंतु केवल वे ही ऐसे नहीं होते॥ ४९ ॥

यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥ ५०॥

पशु, पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी समझदार होते हैं। मनुष्योंकी समझ भी वैसी ही होती है, जैसी उन मृग और पक्षियोंकी होती है॥ ५०॥

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥ ५१ ॥
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति॥ ५२ ॥
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतोन् किं न पश्यसि।
तथापि ममतावर्त्ते मोहग्ते निपातिताः ॥ ५३ ॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥ ५४॥
महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत् slायची
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥ ५५॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥ ५६॥
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ ५७ ॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ५८॥

तथा जैसी मनुष्यों की होती है,वैसी ही उन मृग-पक्षी आदिकी होती है । यह तथा अन्य बातें भी प्राय: दोनोंमें समान ही हैं। समझ होने पर भी इन पक्षियों को तो देखो, ये स्वयं भूखसे पीड़ित होते हुए भी मोहवश बच्चों की चोंच में कितने चाव से अन्न के दाने डाल रहे हैं! नरश्रेष्ठ ! क्या तुम नहीं देखते कि ये मनुष्य समझदार होते हुए भी लोभवश अपने किये हुए उपकार का बदला पाने के लिये पुत्रों की अभिलाषा करते हैं ? यद्यपि उन सबमें समझ की कमी नहीं है,

तथापि वे संसार की स्थिति (जन्म-मरण की परम्परा) बनाये रखने वाले भगवती महामाया के प्रभाव द्वारा ममतामय भँवर से युक्त मोह के गहरे गर्त में गिराये गये हैं। इसलिये इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। जगदीश्वर भगवान् विष्णु की योगनिद्रारूपा जो भगवती महामाया हैं, उन्हीं से यह जगत् मोहित हो रहा है। वे भगवती महामायादेवी ज्ञानियों के भी चित्त को बलपूर्वक खींचकर मोह में डाल देती हैं। वे ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् की सृष्टि करती हैं तथा वे ही प्रसन्न होने पर मनुष्यों को मुक्ति के लिये वरदान देती हैं। वे ही परा विद्या संसार बन्धन और मोक्ष की हेतुभूता सनातनी देवी तथा सम्पूर्ण ईश्वरों की भी अधीश्वरी हैं ॥ ५१-५८॥

राजोवाच ॥ ५९॥
राजाने पूछा-॥५९ ॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्॥६०॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ।
यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥ ६१ ॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥६२॥

भगवन् जिन्हें आप महामाया कहते हैं, वे देवी कौन हैं? ब्रह्मन्! उनका आविर्भाव कैसे हुआ? तथा उनके चरित्र कौन-कौन हैं? ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ महर्षे! उन देवी का जैसा प्रभाव हो, जैसा स्वरूप हो और जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ हो, वह सब मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूँ॥ ६०-६२॥

ऋषिरुवाच ॥ ६३॥
ऋषि बोले-॥६३ ॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥ ६४॥
मे तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥ ६५॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते॥६६॥
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ॥ ६७ ॥
विष्णुकर्णमलोद्धूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥ ६८॥
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः॥ ६९॥
विबोधनार्थाय हरेहरिनेत्रकृतालयाम्।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥ ७०॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ ७१ ॥

राजन्! वास्तव में तो वे देवी नित्यस्वरूपा ही हैं। सम्पूर्ण जगत् उन्हीं का रूप है तथा उन्होंने समस्त विश्व को व्याप्त कर रखा है, तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकार से होता है । वह मुझसे सुनो। यद्यपि वे नित्य और अजन्मा हैं, तथापि जब देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये प्रकट होती हैं, उस समय लोकमें उत्पन्न हुई कहलाती हैं। कल्पके अन्तमें जब सम्पूर्ण जगत् एकार्णव में निमग्न हो रहा था और सबके प्रभु भगवान् विष्णु शेषनाग की शय्या बिछाकर योगनिद्रा का आश्रय ले सो रहे थे, उस समय उनके कानों के मैल से दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए,

जो मधु और कैटभ के नाम से विख्यात थे। वे दोनों ब्रह्माजी का वध करने को तैयार हो गये। भगवान् विष्णु के नाभिकमल में विराजमान प्रजापति ब्रह्माजी ने जब उन दोनों भयानक असुरों को अपने पास आया और भगवान् को सोया हुआ देखा, तब एकाग्रचित्त होकर उन्होंने भगवान् विष्णु को जगाने के लिये उनके नेत्रों में निवास करने वाली योगनिद्रा का स्तवन आरम्भ किया। जो इस विश्वकी अधीश्वरी, जगत को धारण करने

वाली, संसार का पालन और संहार करने वाली तथा तेज:स्वरूप भगवान् विष्णु की अनुपम शक्ति हैं, उन्हीं भगवती निद्रादेवी की भगवान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे ॥ ६४-७१ ॥

ब्रह्मोवाच ।।७२।।
ब्रह्माजीने कहा-॥७२॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वरषट्कारः स्वरात्मिका॥ ७३ ॥
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥ ७४॥
त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्॥ ७५॥
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥ ७६ ॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥ ७७॥
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी"
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥ ७८॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं हरीस्त्वं बुद्धिर्बोध लक्षणा ॥ ७९॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च । छी, मिळे
खड़गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥ ८० ॥
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥८१ ॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वा खिलात्मिके ॥ ८२ ॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा'।
यया त्वया जगत्स्त्रष्टा जगत्पात्यक्ति यो जगत्॥ ८३॥
सोऽपि निद्रावशं नीत: कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥ ८४॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां क: स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥ ८५ ॥
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु॥ ८६ ॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ।॥ ८७ ॥

देवी तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वरषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणवमें अकार, उकार, मकार- इन तीन मात्राओं के रूप में तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओं के अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेष रूप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो। देवि! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो। देवि! तुम्हीं इस विश्व-ब्रह्माण्ड को धारण करती हो । तुमसे ही इस जगत्की सृष्टि होती है। तुम्हीं से इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्प के अन्त में सबको अपना ग्रास बना लेती हो। जगन्मयी देवि ! इस जगत् की उत्पत्ति के समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालन-कालमें स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्त के समय संहार रूप धारण करने वाली हो।

तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो । तुम्हीं तीनों गुणों को उत्पन्न करने वाली सबकी प्रकृति हो। भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ही और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो। लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम खड्ग धारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शंख और धनुष धारण करनेवाली हो। बाण, भुशुण्डी और परिघ-ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं । तुम सौम्य और सौम्यतर हो- इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर

पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो। पर और अपर- सबसे परे रहने वाली परमेश्वरी तुम्हीं हो ।

सर्वस्वरूपे देवि! कहीं भी सत्-असत्रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो। ऐसी अवस्थामें तुम्हारी स्तुति क्या होसकती है? जो इस जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान् को भी जब तुमने निद्रा के अधीन कर दिया है, तब तुम्हारी स्तुति करने में यहाँ कौन समर्थ हो सकता है? मुझको, भगवान् शंकर को तथा भगवान् विष्णु को भी तुमने ही शरीर धारण कराया है; अत: तुम्हारी स्तुति करने की शक्ति किसमें है? देवि ! तुम तो अपने इन उदार प्रभावों से ही प्रशंसित हो। ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोहमें डाल दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णु को शीघ्र ही जगा दो। साथ ही इनके भीतर इन दोनों महान् असुरों को मार डालने की बुद्धि उत्पन्न कर दो॥ ७३-८७॥

ऋषिरुवाच॥ ८८ ॥
ऋषि कहते हैं-॥८८॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥ ८९ ॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः।। ॥ ९०॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः॥ ९१॥
एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥ ९२ ॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥ ९३ ॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।राई
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥ ९४ ॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम्॥ ९५ ॥

राजन्! जब ब्रह्माजी ने वहाँ मधु और कैटभ को मारने के उद्देश्य से भगवान् विष्णु को जगाने के लिये तमोगुण की अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रा की इस प्रकार स्तुति की, तब वे भगवान् के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थल से निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी की दृष्टि के समक्ष खड़ी हो गयीं। योगनिद्रा से मुक्त होने पर जगत् के स्वामी भगवान् जनार्दन उस एकार्णव के जल में शेषनाग की शय्या से जाग उठे। फिर उन्होंने उन दोनों असुरों को देखा।

वे दुरात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी थे और क्रोध से लाल आँखें किये ब्रह्माजी को खा जाने के लिये उद्योग कर रहे थे। तब भगवान् श्रीहरि ने उठकर उन दोनों के साथ पाँच हजार वर्षों तक केवल बाहुयुद्ध किया। वे दोनों भी अत्यन्त बल के कारण उन्मत्त हो रहे थे। इधर महामाया ने भी उन्हें मोह में डाल रखा था; इसलिये वे भगवान् विष्णु से कहने लगे-'हम तुम्हारी वीरता से संतुष्ट हैं। तुम हम लोगों से कोई वर माँगो' ॥ ८९-९५॥

श्रीभगवानुवाच॥ ९६॥
श्रीभगवान् बोले-॥९६॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वर्यावुभावपि ॥ ९७ ॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥ ९८ ॥

यदि तुम दोनों मुझ पर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथ से मारे जाओ । बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है । यहाँ दूसरे किसी वर से क्या लेना है॥ ९७-९८॥

ऋषिरुवाच॥ ९९ ॥
ऋषि कहते हैं-॥९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥ १०० ॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ।॥ १०१ ॥

इस प्रकार धोखे में आ जाने पर जब उन्होंने सम्पूर्ण जगत् में जल-ही-जल देखा, तब कमलनयन भगवान् से कहा-'जहाँ पृथ्वी जल में डूबी हुई न हो- जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो' ॥ १००-१०१ ॥

ऋषिरुवाच॥ १०२॥
ऋषि कहते हैं-॥ १०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥ १०३ ॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते॥ ऐं ॐ॥ १०४ ॥।

तब 'तथास्तु' कहकर शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले भगवान् ने उन दोनों के मस्तक अपनी जाँघ पर रखकर चक्र से काट डाले। इस प्रकार ये देवी महामाया ब्रह्माजी की स्तुति करने पर स्वयं प्रकट हुई थीं। अब पुन: तुमसे उनके प्रभावका वर्णन करता हूँ, सुनो॥ १०३-१०४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्मये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत

श्री दुर्गासप्तशती पाठ (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण)
(द्वितीयोऽध्याय)
।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।
~~~🌼~~~🌼~~~🌼~~~
द्वितीयोऽध्यायः

देवताओं के तेज से देवी का प्रादुर्भाव और
महिषासुर की सेना का वध

विनियोगः
ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिः, महालक्ष्मी देवता, उष्णिक् छन्दः, शाकम्भरी शक्तिः, दुर्गा बीजम्, वायुस्त्वम्, यजुर्वेदः स्वरूपम्,
श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः।

ॐ मध्यम चरित्र के विष्णु ऋषि, महालक्ष्मी देवता, उष्णिक् छन्द, शाकम्भरी शक्ति, दुर्गा बीज, वायु त्व और यजुर्वेद स्वरूप है। श्रीमहा-लक्ष्मी की प्रसन्नता के लिये मध्यम चरित्र के पाठ में इसका विनियोग है।

ध्यानम्

ॐ अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥
~~~

मैं कमल के आसन पर बैठी हुई प्रसन्न मुखवाली महिषासुरमर्दिनी भगवती महालक्ष्मी का भजन करता हूँ, जो अपने हाथों में अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शंख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और चक्र धारण करती हैं।

ॐ ह्रीं ऋषिरुवाच॥ १ ॥
ऋषि कहते हैं-॥ १॥

देवासुरमभूद्युद्ं पूर्णमब्दशतं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे॥ २॥
तत्रासुरैर्महावीर्यर्देवसैन्यं पराजितम् ।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः॥ ३॥

पूर्वकाल में देवताओं और असुरोंमें पूरे सौ वर्षोंतक घोर संग्राम हुआ था। उसमें असुरोंका स्वामी महिषासुर था और देवताओंके नायक इन्द्र थे। उस युद्धमें देवताओंकी सेना महाबली असुरोंसे परास्त हो गयी। सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर महिषासुर इन्द्र बन बैठा ॥ २-३॥

ततः पराजिता देवा: पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ४ ॥

तब पराजित देवता प्रजापति ब्रह्माजी को आगे करके उस स्थान पर गये, जहाँ भगवान् शंकर और विष्णु विराजमान थे ॥ ४ ॥

यथावृत्तंतयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशा: कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ५॥

देवताओं ने महिषासुर के पराक्रम तथा अपनी पराजयका यथावत् वृत्तान्त उन दोनों देवेश्वरों से विस्तार पूर्वक कह सुनाया॥ ५॥

सूर्यन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ६ ॥

वे बोले-'भगवन्! महिषासुर सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, वरुण तथा अन्य देवताओं के भी अधिकार छीनकर स्वयं ही सबका अधिष्ठाता बना बैठा है॥ ६॥

स्वर्गान्निराकृता: सर्वे तेन देवगणा भुवि।
विचरन्ति यथा मत्या महिषेण दुरात्मना ॥ ७ ॥

उस दुरात्मा महिषने समस्त देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है। अब वे मनुष्यों की भाँति पृथ्वी पर विचरते हैं ॥ ७ ॥

एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् ।
शरणं वः प्रपन्ना: स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ८॥

दैत्यों की यह सारी करतूत हमने आप लोगों से कह सुनायी। अब हम आपकी ही शरण में आये हैं। उसके वध का कोई उपाय सोचिये' ॥ ८॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।

चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ।॥ ९ ॥

इस प्रकार देवताओं के वचन सुनकर भगवान् विष्णु और शिव ने दैत्यों पर बड़ा क्रोध किया। उनकी भौंहें तन गयीं और मुँह टेढ़ा हो गया॥ ९ ॥

ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च॥ १०॥
अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥ ११ ॥

तब अत्यन्त कोप में भरे हुए चक्रपाणि श्रीविष्णु के मुख से एक महान् तेज प्रकट हुआ। इसी प्रकार ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र आदि अन्यान्य देवताओं के शरीरसे भी बड़ा भारी तेज निकला। वह सब मिलकर एक हो गया॥ १०-११॥

अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् क्च्छ्र
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १२॥

महान् तेज का वह पुंज जाज्वल्यमान पर्वत-सा जान पड़ा। देवताओं ने देखा, वहाँ उसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त हो रही थीं ॥ १२ ॥

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥ १३॥

सम्पूर्ण देवताओं के शरीर से प्रकट हुए उस तेज की कहीं तुलना नहीं थी। एकत्रित होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया और अपने प्रकाश से तीनों लोकों में व्याप्त जान पड़ा ॥ १३॥

यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ १४॥

भगवान् शंकर का जो तेज था, उससे उस देवी का मुख प्रकट हुआ। यमराज के तेज से उसके सिर में बाल निकल आये। श्रीविष्णुभगवान् के तेज से उसकी भुजाएँ उत्पन्न हुईं ॥ १४॥

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्कोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥ १५ ॥

चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तनों का और इन्द्र के तेज से मध्य भाग (कटिप्रदेश) का प्रादुर्भाव हुआ। वरुण के तेज से जंघा और पिंडली तथा पृथ्वी के तेज से नितम्ब भाग प्रकट हुआ ॥ १५ ॥

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा ।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका॥ १६॥

ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण और सूर्य के तेज से उसकी अँगुलियाँ हुईं। वसुओं के तेज से हाथों की अँगुलियाँ और कुबेर के तेज से नासिका प्रकट हुई।॥ १६ ॥

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥ १७ ॥

उस देवी के दाँत प्रजापति के तेज से

और तीनों नेत्र अग्नि के तेज से प्रकट हुए थे ॥ १७॥

भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥ १८॥

उसकी भौंहें संध्या के और कान वायु के तेज से उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओं के तेज से भी उस कल्याणमयी देवी का आविर्भाव हुआ॥ १८॥

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषादिताः* ।॥ १९॥

तदनन्तर समस्त देवताओं के तेज:पुंज से प्रकट हुई देवी को देखकर महिषासुर के सताये हुए देवता बहुत प्रसन्न हुए॥ १९॥

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥ २०॥

अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु।
पिनाकधारी भगवान् शंकर ने अपने शूल से एक शूल निकालकर उन्हें दिया; फिर भगवान् विष्णु ने भी अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके भगवती को अर्पण किया॥ २० ॥

शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः शशवणुषी
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ २१ ॥

वरुण ने भी शंख भेंट किया, अग्नि ने उन्हें शक्ति दी और वायु ने धनुष तथा बाण से भरे दो तरकस प्रदान किये॥ २१ ॥

वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्त्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥ २२ ॥

सहस्र नेत्रों वाले देवराज इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथी से उतारकर एक घण्टा भी प्रदान किया॥ २२॥

कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥ २३ ।।

यमराज ने कालदण्ड से दण्ड, वरुणने पाश, प्रजापति ने स्फटिकाक्ष की माला तथा ब्रह्माजी ने कमण्डलु भेंट किया॥ २३ ॥

समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम्॥ २४॥

सूर्य ने देवी के समस्त रोम-कूपों में अपनी किरणों का तेज भर दिया। काल ने उन्हें चमकती हुई ढाल और तलवार दी॥ २४॥

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे।
चूडामणि तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥ २५॥
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ २६॥

अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥ २७॥

क्षीरसमुद्र ने उज्ज्वल हार तथा कभी जीर्ण न होने वाले दो दिव्य वस्त्र भेंट किये । साथ ही उन्होंने दिव्य चूड़ामणि, दो कुण्डल, कड़े, उज्ज्वल अर्धचन्द्र, सब बाहुओं के लिये केयूर, दोनों चरणों के लिये निर्मल नूपुर, गले की सुन्दर हँसली और सब अँगुलियों में पहनने के लिये रत्नों की बनी अँगूठियाँ भी दीं। विश्वकर्मा ने उन्हें अत्यन्त निर्मल फरसा भेंट किया॥ २५-२७॥

अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥ २८॥

साथ ही अनेक प्रकार के अस्त्र और अभेद्य कवच दिये; इनके सिवा मस्तक और वक्षःस्थल पर धारण करने के लिये कभी न कुम्हलाने वाले कमलों की मालाएँ दीं ॥ २८॥

अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम्।लगाता
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च॥ २९ ॥

जलधि ने उन्हें सुन्दर कमल का फूल भेंट किया। हिमालय ने सवारी के लिये सिंह तथा भाँति-भाँति के रत्न समर्पित किये॥ २९ ॥

ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥ ३०॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम्।
अन्येरपी सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥ ३१ ॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टाहासं मुहुर्मुहुः।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः॥ ३२॥

धनाध्यक्ष कुबेर ने मधु से भरा पानपात्र दिया तथा सम्पूर्ण नागों के राजा शेष ने, जो इस पृथ्वी को धारण करते हैं, उन्हें बहुमूल्य मणियों से विभूषित नागहार भेंट दिया। इसी प्रकार अन्य देवताओं ने भी आभूषण और अस्त्र - शस्त्र देकर देवी का सम्मान किया। तत्पश्चात् उन्होंने बारंबार अट्टहास पूर्वक उच्च स्वर से गर्जना की। उनके भयंकर नाद से सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा॥ ३०- ३२ ॥

अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे॥ ३३॥

देवी का वह अत्यन्त उच्च स्वर से किया हुआ सिंहनाद कहीं समा न सका, आकाश उसके सामने लघु प्रतीत होने लगा। उससे बड़े जोर की प्रतिध्वनि हुई, जिससे सम्पूर्ण विश्व में हलचल मच गयी और समुद्र काँप उठे॥ ३३॥

चरचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम्*॥ ३४॥

पृथ्वी डोलने लगी और समस्त पर्वत हिलने लगे। उस समय देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ सिंहवाहिनी भवानी से कहा- 'देवि! तुम्हारी जय हो'॥३४॥

तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्मूर्तयः।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥ ३५ ॥
सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुक्तस्थुरुदायुधाः।

आ: किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥ ३६ ॥
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥ ३७॥

साथ ही महर्षियों ने भक्तिभाव से विनम्र होकर उनका स्तवन किया। सम्पूर्ण त्रिलोकी को क्षोभग्रस्त देख दैत्यगण अपनी समस्त सेना को कवच आदि से सुसज्जित कर, हाथों में हथियार ले सहसा उठकर खड़े हो गये। उस समय महिषासुर ने बड़े क्रोध में आकर कहा- 'आ:! यह क्या हो रहा है ?' फिर वह सम्पूर्ण असुरों से घिरकर उस सिंहनाद की ओर लक्ष्य करके दौड़ा और आगे पहुँचकर उसने देवी को देखा, जो अपनी प्रभा से तीनों लोकों को प्रकाशित कर रही थीं॥ ३५ - ३७॥

पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्।
क्षोभिताशेषपातालां धनुज्र्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥ ३८ ॥।

उनके चरणों के भार से पृथ्वी दबी जा रही थी। माथे के मुकुट से आकाश में रेखा-सी खिंच रही थी तथा वे अपने धनुष की टंकार से सातों पातालों को क्षुब्ध किये देती थीं॥ ३८ ॥

दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥ ३९॥

देवी अपनी हजारों भुजाओं से सम्पूर्ण दिशाओं को आच्छादित करके खड़ी थीं। तदनन्तर उनके साथ दैत्यों का युद्ध छिड़ गया॥ ३९ ॥

शस्त्रास्त्रैर्बरहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः॥ ४०।।

नाना प्रकार के अस्त्र- शस्त्रों के प्रहार से सम्पूर्ण दिशाएँ उद्भासित होने लगीं । चिक्षुर नामक महान् असुर महिषासुर का सेनानायक था॥ ४० ॥

युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः॥४१॥

वह देवी के साथ युद्ध करने लगा। अन्य दैत्यों की चतुरंगिणी सेना साथ लेकर चामर भी लड़ने लगा। साठ हजार रथियों के साथ आकर उदग्र नामक महादैत्य ने लोहा लिया ॥ ४१ ॥

अयुध्यतायुतानां च सहस्त्रेण महाहनु:।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः॥ ४२।।

एक करोड़ रथियों को साथ लेकर महाहनु नामक दैत्य युद्ध करने लगा। जिसके रोएँ तलवार के समान तीखे थे, वह असिलोमा नाम का महादैत्य पाँच करोड़ रथी सैनिकों सहित युद्धमें आ डटा ॥ ४२ ॥

अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे।
गजवाजिसहस्त्रौघैरनेकैः' परिवारितः ॥४३॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥ ४४॥
यूयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः * ।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥ ४५॥
यूयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः।
कोटिकोटिसहस्त्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥ ४६ ॥

हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ ४७ ॥
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्ती: केचित्पाशांस्तथापरे ॥ ४८॥

साठ लाख रथियों से घिरा हुआ बाष्कल नामक दैत्य भी उस युद्धभूमि में लड़ने लगा। परिवारित नामक राक्षस हाथी सवार और घुड़सवारों के अनेक दलों तथा एक करोड़ रथियों की सेना लेकर युद्ध करने लगा। बिडाल नामक दैत्य पाँच अरब रथियों से घिरकर लोहा लेने लगा। इनके अतिरिक्त और भी हजारों महादैत्य रथ, हाथी और घोड़ों की सेना साथ लेकर वहाँ देवी के साथ युद्ध करने लगे। स्वयं महिषासुर उस रणभूमि में कोटि-कोटि सहस्त्र रथ, हाथी और घोड़ों की सेनासे घिरा हुआ खड़ा था। वे दैत्य देवी के साथ तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, खड्ग, परशु और पट्टिश आदि अस्त्र -शस्त्रों का प्रहार करते हुए युद्ध कर रहे थे। कुछ दैत्यों ने उनपर शक्ति का प्रहार किया, कुछ लोगों ने पाश फेंके ॥ ४३-४८॥

देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥ ४९॥
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरषिभिः॥ ५०॥
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी ॥ ५१॥
चरचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशन:।
नि:श्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका॥ ५२ ॥
त एवं सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्त्रशः।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ॥ ५३ ॥

तथा कुछ दूसरे दैत्यों ने खड्ग प्रहार करके देवी को मार डालने का उद्योग किया। देवी ने भी क्रोध में भरकर खेल-खेल में ही अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करके दैत्यों के वे समस्त अस्त्र-शस्त्र काट डाले। उनके मुख पर परिश्रम या थकावट का रंचमात्र भी चिह्न नहीं था, देवता और ऋषि उनकी स्तुति करते थे और वे भगवती परमेश्वरी दैत्यों के शरीरों पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करती रहीं । देवी का वाहन सिंह भी क्रोध में भरकर गर्दन के बालों को हिलाता हुआ असुरों की सेना में इस प्रकार विचरने लगा, मानो वनों में दावानल फैल रहा हो। रणभूमि में दैत्यों के साथ युद्ध करती हुई अम्बिकादेवी ने जितने नि:श्वास छोड़े, वे सभी तत्काल सैकड़ो हजारों गणों के रूप में प्रकट हो गये और परशु, भिन्दिपाल, खड्ग तथा पट्टिश आदि अस्त्रोंद्वारा असुरों का सामना करने लगे ॥ ४९-५३॥

नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे॥ ५४॥

देवी की शक्ति से बढ़े हुए वे गण असुरों का नाश करते हुए नगाड़ा और शंख आदि बाजे बजाने लगे ॥ ५४॥

मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे |
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः * ॥ ५५॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान्।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान्॥ ५६॥

उस संग्राम-महोत्सव में कितने ही गण मृदंग बजा रहे थे । तदनन्तर देवी ने त्रिशूल से, गदा से, शक्ति की वर्षा से और खड्ग आदि से सैकड़ों महादैत्यों का संहार कर डाला। कितनों को घण्टे के भयंकर नाद से मूर्च्छित करके मार गिराया ॥ ५५ ५६॥

असुरान् भुवि पाशन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।

केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे॥ ५७॥

बहुतेरे दैत्यों को पाश से बाँधकर धरती पर घसीटा। कितने ही दैत्य उनकी तीखी तलवार की मार से दो-दो टुकड़े हो गये॥ ५७ ॥

विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥ ५८॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे॥ ५९॥

कितने ही गदा की चोट से घायल हो धरती पर सो गये। कितने ही मूसल की मार से अत्यन्त आहत होकर रक्त वमन करने लगे। कुछ दैत्य शूल से छाती फट जाने के कारण पृथ्वी पर ढेर हो गये। उस रणांगण में बाण समूहों की वृष्टि से कितने ही असुरों की कमर टूट गयी॥ ५८-५९ ॥

श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ ६० ॥
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्नजङ्कास्त्वपरे पेतुरुव्व्यां महासुराः॥ ६१॥
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्दैव्या द्विधा कृताः।
छिनेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ।॥६२॥
कबन्धा युयुधुर्दैव्या गृहीतपरमायुधाः हल
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः॥ ६३॥

बाज की तरह झपटने वाले देवपीडक दैत्यगण अपने प्राणों से हाथ धोने लगे। किन्हीं की बाँहें छिन्न-भिन्न हो गयीं कितनों की गर्दनें कट गयीं। कितने ही दैत्यों के मस्तक कट-कटकर गिरने लगे। कुछ लोगों के शरीर मध्यभाग में ही विदीर्ण हो गये। कितने ही महादैत्य जाँघें कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़े । कितनों को ही देवी ने एक बाँह, एक पैर और एक नेत्रवाले करके दो टुकड़ों में चीर डाला। कितने ही दैत्य मस्तक कट जाने पर भी गिरकर फिर उठ जाते और केवल धड़के ही रूप में अच्छे अच्छे हथियार हाथ में ले देवी के साथ युद्ध करने लगते थे। दूसरे कबन्ध युद्धके बाजों की लय पर नाचते थे॥ ६०-६३॥

कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः* ॥ ६४॥
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥ ६५॥

कितने ही बिना सिर के धड़ हाथों में खड्ग, शक्ति और ऋष्टि लिये दौड़ते थे तथा दूसरे दूसरे महादैत्य 'ठहरो! ठहरो!!' यह कहते हुए देवी को युद्ध के लिये ललकारते थे। जहाँ वह घोर संग्राम हुआ था, वहाँ की धरती देवी के गिराये हुए रथ, हाथी, घोड़े और असुरों की लाशों से ऐसी पट गयी थी कि वहाँ चलना-फिरना असम्भव हो गया था॥ ६४-६५॥

शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ ६६॥

दैत्यों की सेना में हाथी, घोड़े और असुरों के शरीरों से इतनी अधिक मात्रा में रक्तपात हुआ था कि थोड़ी ही देर में वहाँ खून की बड़ी-बड़ी नदियाँ बहने लगीं ॥ ६६ ॥

क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ।॥ ६७॥

जगदम्बा ने असुरों की विशाल सेना को क्षणभर में नष्ट कर दिया-ठीक उसी तरह, जैसे तृण और काठ के भारी ढेर को आग कुछ ही क्षणों में भस्म कर देती है॥ ६७ ॥

स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥ ६८॥

और वह सिंह भी गर्दन के बालों को हिला-हिलाकर जोर-जोर से गर्जना करता हुआ दैत्यों के शरीरों से मानो उनके प्राण चुने लेता था ॥ ६८ ॥

देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः।
यथैषाँ तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ॐ ॥ ६९॥

वहाँ देवी के गणों ने भी उन महादैत्यों के साथ ऐसा युद्ध किया, जिससे आकाश में खड़े हुए देवतागण उन पर बहुत संतुष्ट हुए और फूल बरसाने लगे॥ ६९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णि के मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'महिषासुर की सेना का वध नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २ ॥

श्री दुर्गा सप्तशती पाठ तृतीय अध्याय (हिंदी अनुवाद अर्थ सहित सम्पूर्ण)

तीसरे अध्याय का पाठ शत्रुओं से छुटकारा प्राप्त करने के लिए किया जाता है। दोस्तों शत्रुओं का भय व्यक्ति के जीवन में बहुत पीड़ा का कारण होता है क्योंकि भय ग्रस्त व्यक्ति चाहे वो कितनी भी सुख सुविधा में रह रहा हो कभी भी सुखी नहीं रह सकताहै अतः इस अध्याय के पाठ करने से आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार के भय नष्ट हो जाते हैं। अगर आपके गुप्त शत्रु हैं जिनका पता नहीं चलता और जो सबसे ज्यादा हानि पहुंचा सकते हैं तो ऐसे शत्रुओं से छुटकारा पाने के लिए तीसरे अध्याय का पाठ करना सर्वोत्तम होता है।

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

सेनापतियोंसहित महिषासुर का वध

ध्यानम्

ॐ उद्यद्भानुसहस्त्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां रक्तालिप्त पयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

जगदम्बा के श्रीअंगों की कान्ति उदयकाल के सहस्रों सूर्यों के समान है। वे लाल रंगकी रेशमी साड़ी पहने हुए हैं। उनके गले में मुण्डमाला शोभा पा रही है। दोनों स्तनों पर रक्त चन्दन का लेप लगा है। वे अपने कर कमलों में जपमालिका, विद्या और अभय तथा वर नामक मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखारविन्द की बड़ी शोभा हो रही है। उनके मस्तक पर चन्द्रमा के साथ ही रत्नमय मुकुट बँधा है तथा वे कमल के आसन पर विराजमान हैं। ऐसी देवी को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

ऋषि कहते हैं-॥ १ ॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥ २॥

दैत्यों की सेना को इस प्रकार तहस नहस होते देख महादैत्य सेनापति चिक्षुर क्रोध में भरकर अम्बिकादेवी से युद्ध करने के लिये आगे बढ़ा॥ २॥

स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरुगिरेः श्रृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः॥ ३॥

वह असुर रणभूमि में देवी के ऊपर इस प्रकार बाणों की वर्षा करने लगा, जैसे बादल मेरुगिरिके शिखरपर पानी की धार बरसा रहा हो॥ ३ ॥

तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥ ४ ॥

तब देवी ने अपने बाणों से उसके बाण समूह को अनायास ही काटकर उसके घोड़ों और सारथि को भी मार डाला॥४ ॥

चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्रितम्।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ ५ ॥

साथ ही उसके धनुष तथा अत्यन्त ऊँची ध्वजा को भी तत्काल काट गिराया। धनुष कट जाने पर उसके अंगों को अपने बाणों से बींध डाला॥ ५ ॥

सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथि: ।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः॥ ६॥

धनुष, रथ, घोड़े और सारथि के नष्ट हो जानेपर वह असुर ढाल और तलवार लेकर देवी की ओर दौड़ा ॥ ६॥

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि ।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥ ७॥

उसने तीखी धारवाली तलवारसे सिंहके मस्तकपर चोट करके देवीकी भी बायीं भुजा में बड़े वेग से प्रहार किया॥ ७ ॥

तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचन: ॥ ८ ॥

राजन् देवीकी बाँह पर पहुँचते ही वह तलवार टूट गयी, फिर तो क्रोध से लाल आँखें करके उस राक्षस ने शूल हाथ में लिया॥ ८ ॥

चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥ ९ ॥

और उसे उस महादैत्य ने भगवती भद्रकाली के ऊपर चलाया। वह शूल आकाश से गिरते हुए सूर्यमण्डल की भाँति अपने तेज से प्रज्वलित हो उठा।॥ ९ ॥

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः॥ १० ॥

उस शूल को अपनी ओर आते देख देवी ने भी शूल का प्रहार किया। उससे राक्षस के शूल के सैकड़ों टुकड़े हो गये, साथ ही महादैत्य चिक्षुर की भी धज्जियाँ उड़ गयीं। वह प्राणों से हाथ धो बैठा ॥ १०॥

हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशाद्दनः ॥ ११ ॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥ १२ ॥

महिषासुर के सेनापति उस महापराक्रमी चिक्षुर के मारे जाने पर देवताओं को पीड़ा देने वाला चामर हाथी पर चढ़कर आया उसने भी देवी के ऊपर शक्ति का प्रहार किया, किंतु जगदम्बा ने उसे अपने हुँकार से ही आहत एवं निष्प्रभ करके तत्काल पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ११-१२॥

भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वतः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥ १३ ॥

शक्ति टूटकर गिरी हुई देख चामर को बड़ा क्रोध हुआ। अब उसने शूल चलाया, किंतु देवी ने उसे भी अपने बाणों द्वारा काट डाला।॥ १३ ॥

ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः ।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥ १४॥

इतने में ही देवी का सिंह उछलकर हाथी के मस्तक पर चढ़ बैठा और उस दैत्य के साथ खूब जोर लगाकर बाहुयुद्ध करने लगा॥ १४॥

युद्धयमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः॥ १५।।

वे दोनों लड़ते-लड़ते हाथीसे पृथ्वीपर आ गये और अत्यन्त क्रोध में भरकर एक-दूसरे पर बड़े भयंकर प्रहार करते हुए लड़ने लगे॥ १५॥

ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम्॥ १६॥

तदनन्तर सिंह बड़े वेग से आकाश की ओर उछला और उधर से गिरते समय उसने पंजों की मार से चाम रका सिर धड़ से अलग कर दिया॥ १६॥

उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥ १७॥

इसी प्रकार उदग्र भी शिला और वृक्ष आदि की मार खाकर रणभूमि में देवी के हाथ से मारा गया तथा कराल भी दांतो, मुक्कों और थप्पड़ों की चोट से धराशायी हो गया॥ १७॥

देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥ १८॥

क्रोध में भरी हुई देवी ने गदा की चोट से उद्धत का कचूमर निकाल डाला। भिन्दिपाल से वाष्कल को तथा बाणों से ताम्र और अन्धक को मौत के घाट उतार दिया॥ १८॥

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम्।
ल्लोगं त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ १९ ॥
तीन नेत्रोंवाली परमेश्वरी ने त्रिशूल से उग्रास्य,
उग्रवीर्य तथा महाहनु नामक दैत्यों को मार डाला॥ १९ ॥
बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ २०॥

तलवार की चोट से विडाल के मस्तक को धड़ से काट गिराया। दुर्धर और दुर्मुख- इन दोनों को भी अपने बाणों से यमलोक भेज दिया॥ २० ॥

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान्॥२१॥

इस प्रकार अपनी सेना का संहार होता देख महिषासुर ने भैंसे का रूप धारण करके देवी के गणों को त्रास देना आरम्भ किया॥ २१ ॥

कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ॥ २२॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥ २३॥

किन्हीं को थूथुन से मारकर, किन्हीं के ऊपर खुरों का प्रहार करके, किन्हीं-किन्हीं को पूँछ से चोट पहुँचाकर, कुछ को सींगों से विदीर्ण करके, कुछ गणों को वेग से, किन्हीं को सिंहनाद से, कुछ को चक्कर देकर और कितनों को निःश्वास-वायु के झोंके से धराशायी कर दिया॥ २२-२३॥

निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः ।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥ २४॥

इस प्रकार गणों की सेना को गिराकर वह असुर महादेवी के सिंह को मारने के लिये झपटा। इससे जगदम्बा को बड़ा क्रोध हुआ॥ २४॥

सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥ २५ ॥

उधर महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोध में भरकर धरती को खुरों से खोदने लगा तथा अपने सींगों से ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को उठाकर फेंकने और गर्जने लगा॥ २५ ॥

वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥ २६॥

उसके वेग से चक्कर देने के कारण पृथ्वी क्षुब्ध होकर फटने लगी। उसकी पूँछ से टकराकर समुद्र सब ओर से धरती को डुबोने लगा॥ २६ ॥

धुतशृंङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ २७ ॥

हिलते हुए सींगों के आघात से विदीर्ण होकर बादलों के टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके श्वास की प्रचण्ड वायु के वेग से उड़े हुए सैकड़ों पर्वत आकाश से गिरने लगे॥ २७॥

इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत्॥ २८॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए उस महादैत्य को अपनी ओर आते देख चण्डिका ने उसका वध करने के लिये महान् क्रोध किया॥ २८॥

सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥ २९ ॥

उन्होंने पाश फेंककर उस महान् असुर को बाँध लिया। उस महासंग्राम में बँध जाने पर उसने भैंसे का रूप त्याग दिया॥ २९ ॥

ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥ ३० ।।

और तत्काल सिंह के रूप में वह प्रकट हो गया। उस अवस्था में जगदम्बा ज्यों ही उसका मस्तक काटने के लिये उद्यत हुईं, त्यों ही वह खड्गधारी पुरुष के रूप में दिखायी देने लगा॥ ३० ॥

तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकै: ।
तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महागजः॥ ३१ ।।

तब देवी ने तुरंत ही बाणों की वर्षा करके ढाल और तलवार के साथ उस पुरुष को भी बींध डाला। इतने में ही वह महानु गजराज के रूप में परिणत हो गया॥ ३१ ॥

करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत॥ ३२॥

तथा अपनी सूँड़से देवी के विशाल सिंह को खींचने और गर्जने लगा। खींचते समय देवी ने तलवार से उसकी सूँड़ काट डाली॥ ३२ ॥

ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः ।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ३३॥

तब उस महादैत्य ने पुनः भैंसे का शरीर धारण कर लिया और पहले की ही भाँति चराचर प्राणियों सहित तीनों लोकों को व्याकुल करने लगा ॥ ३३ ॥

ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुक्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥ ३४॥

तब क्रोध में भरी हुई जगन्माता चण्डिका बारंबार उत्तम मधु का पान करने और लाल आँखें करके हँसने लगीं॥ ३४॥

ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः ।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान्॥ ३५॥

उधर वह बल और पराक्रम के मद से उन्मत्त हुआ राक्षस गर्जने लगा और अपने सींगों से चण्डी के ऊपर पर्वतों को फेंकने लगा॥ ३५ ॥

सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥ ३६॥

उस समय देवी अपने बाणों के समूहों से उसके फेंके हुए पर्वतों को चूर्ण करती हुई बोलीं। बोलते समय उनका मुख मधु के मद से लाल हो रहा था और वाणी लड़खड़ा रही थी॥ ३६॥

देव्युवाच॥ ३७॥
देवीने कहा-॥ ३७॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् ।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥ ३८ ॥

ओ मूढ़ ! मैं जब तक मधु पीती हूँ, तब तक तू क्षणभर के लिये खूब गर्ज ले। मेरे हाथ से यहीं तेरी मृत्यु हो जाने पर अब शीघ्र ही देवता भी गर्जना करेंगे ॥ ३८॥

ऋषिरुवाच॥ ३९॥
ऋषि कहते हैं-॥३९॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥ ४०॥

यों कहकर देवी उछलीं और उस महादैत्य के ऊपर चढ़ गयीं। फिर अपने पैर से उसे दबाकर उन्होंने शूल से उसके कण्ठ में आघात किया॥ ४०॥

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः ।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥ ४१ ।।

उनके पैर से दबा होने पर भी महिषासुर अपने मुख से [दूसरे रूप में बाहर होने लगा] अभी आधे शरीर से ही वह बाहर निकलने पाया था कि देवी ने अपने प्रभाव से उसे रोक दिया॥ ४१ ॥

अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः २ ॥ ४२॥

आधा निकला होने पर भी वह महादैत्य देवी से युद्ध करने लगा। तब देवी ने बहुत बड़ी तलवार से उसका मस्तक काट गिराया ॥ ४२ ॥

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ।
प्रहर्ष च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥ ४३॥

फिर तो हाहाकार करती हुई दैत्यों की सारी सेना भाग गयी तथा सम्पूर्ण देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ४३॥

तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः ।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ॐ॥ ४४॥

देवताओं ने दिव्य महर्षियों के साथ दुर्गादेवी का स्तवन किया। गन्धर्वराज गाने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ ४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णि के मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'महिषासुरवध' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

श्री दुर्गासप्तशती पाठ (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण)
(चतुर्थोऽध्याय)
।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।
~~~🌼~~~🌼~~~🌼~~~
चतुर्थोऽध्यायः इन्द्रादि देवताओं द्वारा देवी की स्तुति

ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैरिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां।
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं
ध्यायेद् दुर्गा जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुष जिनकी सेवा करते हैं तथा देवता जिन्हें सब ओर से घेरे रहते हैं, उन 'जया' नामवाली दुर्गादेवी का ध्यान करे। उनके श्रीअंगों की आभा काले मेघ के समान श्याम है। वे अपने कटाक्षों से शत्रुसमूह को भय प्रदान करती हैं। उनके मस्तक पर आबद्ध चन्द्रमा की रेखा शोभा पाती है। वे अपने हाथों में शंख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे सिंह के कंधे पर चढ़ी हुई हैं और अपने तेज से तीनों लोकों को
परिपूर्ण कर रही हैं।

ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥
ऋषि कहते हैं-॥ १ ॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा।
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ २॥

अत्यन्त पराक्रमी दुरात्मा महिषासुर तथा उसकी दैत्य-सेना के देवी के हाथ से मारे जाने पर इन्द्र आदि देवता प्रणाम के लिये गर्दन तथा कंधे झुकाकर उन भगवती दुर्गा का उत्तम वचनों द्वारा स्तवन करने लगे । उस समय उनके सुन्दर अंगों में अत्यन्त हर्ष के कारण रोमांच हो आया था॥ १-२ ॥

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूत्या
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नता: स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ ३ ॥

देवता बोले 'सम्पूर्ण देवताओं की शक्ति का समुदाय ही जिनका स्वरूप है तथा जिन देवी ने अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है, समस्त देवताओं और महर्षियों की पूजनीया उन जगदम्बा को हम भक्ति-पूर्वक नमस्कार करते हैं । वे हम लोगों का कल्याण करें ॥ ३ ॥
~~~

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ४ ॥

जिनके अनुपम प्रभाव और बल का वर्णन करने में भगवान् शेषनाग, ब्रह्माजी तथा महादेव जी भी समर्थ नहीं हैं, वे भगवती चण्डिका सम्पूर्ण जगत् का पालन एवं अशुभ भय का नाश करनेका विचार करें ॥ ४ ॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥ ५॥

जो पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं ही लक्ष्मी रूप से, पापियों के यहाँ दरिद्रतारूपसे, शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदय में बुद्धि रूप से, सत्पुरुषों में श्रद्धारूप से तथा कुलीन मनुष्य में लज्जा रूप से निवास करती हैं, उन आप भगवती दुर्गा को हम नमस्कार करते हैं । देवि ! आप सम्पूर्ण विश्व का पालन कीजिये ॥ ५ ॥

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु॥ ६॥

देवि ! आपके इस अचिन्त्य रूप का, असुरों का नाश करने वाले भारी पराक्रम का तथा समस्त देवताओं और दैत्यों के समक्ष युद्ध में प्रकट किये हुए आपके अद्भुत चरित्रों का हम किस प्रकार वर्णन करें ॥ ६ ॥

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ७ ॥

आप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति में कारण हैं। आप में सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण- ये तीनों गुण मौजूद हैं; तो भी दोषों के साथ आपका संसर्ग नहीं जान पड़ता। भगवान् विष्णु और महादेवजी आदि देवता भी आपका पार नहीं पाते। आप ही सबका आश्रय हैं। यह समस्त जगत् आपका अंशभूत है; क्योंकि आप सबकी आदिभूत अव्याकृता परा प्रकृति
हैं॥ ७॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि ।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च॥ ८॥

देवि! सम्पूर्ण यज्ञों में जिसके उच्चारण से सब देवता तृप्ति लाभ करते हैं, वह स्वाहा आप ही हैं। इसके अतिरिक्त आप पितरों की भी तृप्ति का कारण हैं, अतएव सब लोग आपको स्वधा भी कहते हैं ८॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-

र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ९ ॥

देवि! जो मोक्ष की प्राप्ति का साधन है, अचिन्त्य महाव्रतस्वरूपा है, समस्त दोषों से रहित, जितेन्द्रिय, तत्त्वको ही सार वस्तु मानने वाले तथा मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते हैं, वह भगवती परा विद्या आप ही हैं॥ ९॥

शब्दात्मिका सुविमलग्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री॥ १०॥

आप शब्दस्वरूपा हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्गीथ के मनोहर पदों के पाठ से युक्त सामवेद का भी आधार आप ही हैं। आप देवी, त्रयी (तीनों वेद) और भगवती (छहों ऐश्वर्यों से युक्त) हैं । इस विश्व की उत्पत्ति एवं पालन के लिये आप ही वार्ता (खेती एवं आजीविका) के रूप में प्रकट हुई हैं। आप सम्पूर्ण जगत् की घोर पीड़ा का नाश करने वाली हैं ॥ १० ॥

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ ११ ॥

देवि! जिससे समस्त शास्त्रों के सार का ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति आप ही हैं। दुर्गम भवसागर से पार उतारने वाली नौका रूप दुर्गादेवी भी आप ही हैं। आपकी कहीं भी आसक्ति नहीं है । कैटभ के शत्रु भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में एकमात्र निवास करने वाली भगवती लक्ष्मी तथा भगवान् चन्द्रशेखर द्वारा सम्मानित गौरी देवी भी आप ही हैं ॥ ११ ॥

ईषत्सहाससममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण॥ १२॥

आपका मुख मन्द मुसकान से सुशोभित, निर्मल, पूर्ण चन्द्रमा के बिम्ब का अनुकरण करने वाला और उत्तम सुवर्ण की मनोहर कान्ति से कमनीय है; तो भी उसे देखकर महिषासुर को क्रोध हुआ और सहसा उसने उसपर प्रहार कर दिया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है॥ १२ ॥

दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन॥ १३ ॥

देवि! वही मुख जब क्रोध से युक्त होने पर उदयकाल के चन्द्रमा की भाँति लाल और तनी हुई भौंहों के कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर जो महिषासुर के प्राण तुरंत नहीं निकल गये, यह उससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात है; क्योंकि क्रोध में भरे हुए यमराज को देखकर भला, कौन जीवित रह सकता है? ॥ १३॥

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १४॥

देवि ! आप प्रसन्न हों। परमात्म स्वरूपा आपके प्रसन्न होने पर जगत् का अभ्युदय होता है और क्रोध में भर जाने पर आप तत्काल ही.. कितने कुलों का सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभव में आयी है; क्योंकि महिषासुर की यह विशाल सेना क्षणभर में आपके कोप से नष्ट हो गयी है॥ १४॥

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥ १५॥

सदा अभ्युदय प्रदान करने वाली आप जिन पर प्रसन्न रहती हैं, वे ही देश में सम्मानित हैं, उन्हीं को धन और यश की प्राप्ति होती है, उन्हीं का धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने हृष्ट-पुष्ट स्त्री, पुत्र और भृत्यों के साथ धन्य माने जाते हैं । १५ ॥

धर्म्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन॥ १६॥

देवि! आपकी ही कृपा से पुण्यात्मा पुरुष प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सदा सब प्रकार के धर्मानुकूल कर्म करता है और उसके प्रभाव से स्वर्गलोक में जाता है; इसलिये आप तीनों लोकों में निश्चय ही मनोवांछित फल देनेवाली हैं ॥ १६ ॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽद्रचित्ता ॥ १७॥

माँ दुर्गे! आप स्मरण करने पर सब प्राणियों का भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषों द्वारा चिन्तन करने पर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरने वाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयाद्र रहता हो ॥ १७ ॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥ १८ ॥

देवि! इन राक्षसों के मारने से संसार को सुख मिले तथा ये राक्षस चिरकाल तक नरक में रहने के लिये भले ही पाप करते रहे हों, इस समय संग्राम में मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्गलोक में जायँ- निश्चय ही यही सोचकर आप शत्रुओं का वध
करती हैं॥ १८॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥ १९ ॥

आप शत्रुओं पर शस्त्रों का प्रहार क्यों करती हैं? समस्त असुरों को दृष्टिपात मात्र से ही भस्म क्यों नहीं कर देतीं? इसमें एक रहस्य है। ये शत्रु भी हमारे शस्त्रों से पवित्र होकर उत्तम लोकों में जायँ- इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त उत्तम रहता है॥ १९॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत्॥ २०॥

खड्ग के तेज:पुंज की भयंकर दीप्ति से तथा आपके त्रिशूल के अग्रभाग की घनीभूत प्रभा से चौंधियाकर जो असुरों की आँखें फूट नहीं गयीं, उसमें कारण यही था कि वे मनोहर रश्मियों से युक्त चन्द्रमा के समान आनन्द प्रदान करने वाले आपके इस सुन्दर मुख का दर्शन करते थे॥ २०॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तवदेवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तु हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ २१ ॥

देवि! आपका शील दुराचारियों के बुरे बर्ताव को दूर करने वाला है। साथ ही यह रूप ऐसा है, जो कभी चिन्तन में भी नहीं आ सकता और जिसकी कभी दूसरों से तुलना भी नहीं हो सकती; तथा आपका बल और पराक्रम तो उन दैत्यों का भी नाश करने वाला है, जो कभी देवताओं के पराक्रम को भी नष्ट कर चुके थे। इस प्रकार आपने शत्रुओं पर भी अपनी दया ही प्रकट की है॥ २१ ॥

केनोपमा भवत् तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ २२।॥

वरदायिनी देवि ! आपके इस पराक्रम की किसके साथ तुलना हो सकती है तथा शत्रुओं को भय देने वाला एवं अत्यन्त मनोहर ऐसा रूप भी आपके सिवा और कहाँ है ? हृदय में कृपा और युद्ध में निष्ठुरता- ये दोनों बातें तीनों लोकों के भीतर केवल आप में ही देखी गयी हैं॥ २२ ॥

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन वा गदृटा
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥ २३॥

मातः! आपनेशत्रुओं का नाश करके इस समस्त त्रिलोकी की रक्षा की है। उन शत्रुओं को भी युद्धभूमि में मारकर स्वर्गलोक में पहुँचाया है तथा उन्मत्त दैत्यों से प्राप्त होने वाले हमलोगों के भय को भी दूर कर दिया है, आपको हमारा नमस्कार है ॥ २३॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ २४॥

देवि! आप शूलसे हमारी रक्षा करें। अम्बिके ! आप खड्गसे भी हमारी रक्षा करें तथा घण्टा की ध्वनि और धनुष की टंकार से भी हमलोगों की रक्षा करें ॥ २४ ॥

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।

भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ २५॥

चण्डिके! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में आप हमारी रक्षा करें तथा ईश्वरि! अपने त्रिशूल को घुमाकर आप उत्तर दिशा में भी हमारी रक्षा करें ॥ २५ ॥

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ २६॥

तीनों लोकों में आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भयंकर रूप विचरते रहते हैं, उनके द्वारा भी आप हमारी तथा इस भूलोक की रक्षा करें ॥ २६ ॥

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ २७॥

अम्बिके ! आपके कर- पल्लवों में शोभा पाने वाले खड्ग, शूल और गदा आदि जो-जो अस्त्र हों, उन सबके द्वारा आप सब ओरसे हमलोगोंकी रक्षा करें ॥ २७ ॥

ऋषिरुवाच॥ २८॥
ऋषि कहते हैं-॥ २८॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गरन्धानुलेपनैः ॥ २९ ॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु * धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ ३० ॥

इस प्रकार जब देवताओं ने जगन्माता दुर्गा की स्तुति की और नन्दन-वन के दिव्य पुष्पों एवं गन्ध-चन्दन आदि के द्वारा उनका पूजन किया, फिर सबने मिलकर जब भक्तिपूर्वक दिव्य धूपों की सुगन्ध निवेदन की, तब देवी ने प्रसन्नवदन होकर प्रणाम करते हुए सब देवताओं से कहा - ॥२९-३० ॥

देव्युवाच॥ ३१ ॥
देवी बोलीं- ॥ ३१ ॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् * ॥ ३२ ॥

देवताओ! तुम सब लोग मुझसे जिस वस्तु की अभिलाषा रखते हो, उसे माँगो ॥ ३२ ॥

देवा ऊचुः॥ ३३॥
देवता बोले ॥ ३३॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥ ३४॥

देवता बोले- कुछ भी बाकी नहीं है॥ ३४॥

यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥ ३५ ॥

क्योंकि हमारा यह शत्रु महिषासुर मारा गया। महेश्वरि! इतने पर भी यदि आप हमें और वर देना चाहती हैं॥ ३५ ॥

संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ ३६॥
तस्य वित्तर्द्द्धविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिवके ॥ ३७ ॥

भगवती ने हमारी सब इच्छा पूर्ण कर दी, अब हम जब-जब आपका स्मरण करें, तब-तब आप दर्शन देकर हमलोगों के
महान् संकट दूर कर दिया करें तथा प्रसन्नमुखी अम्बिके ! जो मनुष्य इन स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करे, उसे वित्त, समृद्धि और वैभव देने के साथ ही उसकी धन और स्त्री आदि सम्पत्तिको भी बढ़ाने के लिये आप सदा हम पर प्रसन्न रहें॥ ३६-३७॥

ऋषिरुवाच॥ ३८॥
ऋषि कहते हैं-॥ ३८॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप॥ ३९॥

राजन्! देवताओं ने जब अपने तथा जगत् के कल्याण के लिये भद्रकाली देवी को इस प्रकार प्रसन्न किया, तब वे 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ३९ ॥

इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ४०॥

भूपाल ! इस प्रकार पूर्वकाल में तीनों लोकों का हित चाहने वाली देवी जिस प्रकार देवताओं के शरीरों से प्रकट हुई थीं; वह सब कथा मैंने कह सुनायी॥ ४०॥

पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत्।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ४१ ।।
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते।॥ ह्रीं ॐ॥ ४२॥

अब पुनः देवताओं का उपकार करने वाली वे देवी दुष्ट दैत्यों तथा शुम्भ-निशुम्भ का वध करने एवं सब लोकों की रक्षा करने के लिये गौरीदेवी के शरीर से जिस प्रकार प्रकट हुई थीं वह सब प्रसंग मेरे मुँह से सुनो । मैं उसका तुमसे यथावत् वर्णन करता हूँ॥ ४१-४२ ॥

श्री दुर्गा सप्तशती पाठ पांचवा अध्याय अर्थ सहित (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण) (पंचमोध्याय)

पांचवे अध्याय के प्रभाव से हर प्रकार के भय का नाश होता है। चाहे वो भूत प्रेत की बाधा हो,या बुरे स्वप्न परेशान करते हो। या व्यक्ति हर जगह से परेशान हो,तो पांचवें अध्याय के पाठ से इन सभी चीजों से मुक्ति मीलती है।

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

पञ्चमोऽध्यायः

देवताओं द्वारा देवी की स्तुति, चण्ड-मुण्ड के मुखसे अम्बिका के रूप की प्रशंसा सुनकर शुम्भ का उनके पास दूत भेजना और दूत का निराश लौटना

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्र ऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः स्वरूपम्, महासरस्वती प्रीत्यर्थे उत्तरचरित्र पाठे विनियोगः।

ॐ इस उत्तरचरित्र के रुद्र ऋषि हैं, महासरस्वती देवता हैं, अनुष्टुप् छन्द है, भीमा शक्ति है, भ्रामरी बीज है, सूर्य त्त्व है और सामवेद स्वरूप है। महासरस्वती की प्रसन्नता के लिये उत्तरचरित्र के पाठ में इसका विनियोग किया जाता है।

ध्यानम्

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥

जो अपने करकमलों में घण्टा, शूल, हल, शंख, मूसल, चक्र,धनुष और बाण धारण करती हैं, शरद्ऋतु के शोभासम्पन्न चन्द्रमा के समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो तीनों लोकों की आधारभूता और शुम्भ आदि दैत्यों का नाश करने वाली हैं तथा गौरी के शरीर से जिनका प्राकट्य हुआ है, उन महासरस्वती देवी का मैं निरन्तर भजन करता हूँ।

ॐ क्लीं' ऋषिरुवाच॥ १॥
ऋषि कहते हैं-॥ १ ॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्॥ २॥

पूर्वकाल में शुम्भ और निशुम्भ नामक असुर ने अपने बल के घमंड में आकर शचीपति इन्द्र के हाथ से तीनों लोकों का राज्य और यज्ञभाग छीन लिये॥ २ ॥

तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम्
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च॥ ३॥
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वहिनकर्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः॥ ४ ॥
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥ ५ ॥
तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥ ६॥

वे ही दोनों सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर, यम और वरुण के अधिकार का भी उपयोग करने लगे। वायु और अग्नि का कार्य भी वे ही करने लगे। उन दोनों ने सब देवताओं को अपमानित, राज्यभ्रष्ट, पराजित तथा अधिकारहीन करके स्वर्ग से निकाल दिया। उन दोनों महान् असुरों से तिरस्कृत देवताओं ने अपराजिता देवी का स्मरण किया और सोचा-'जगदम्बा ने हम- लोगों को वर दिया था कि आपत्तिकाल में स्मरण करने पर मैं तुम्हारी सब आपत्तियों का तत्काल नाश कर दूँगी'॥ ३- ६ ॥

इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः॥ ७॥

यह विचारकर देवता गिरिराज हिमालय पर गये और वहाँ भगवती विष्णु माया की स्तुति करने लगे॥ ७ ॥

देवा ऊचुः॥ ८॥
देवता बोले-॥८॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियता: प्रणता: स्म ताम् ॥ ९ ॥

देवी को नमस्कार है, महादेवी शिवा को सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्रा को प्रणाम है। हम लोग नियमपूर्वक जगदम्बा को नमस्कार करते हैं॥ ९॥

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ १०॥

रौद्रा को नमस्कार है । नित्या, गौरी एवं धात्री को बारंबार नमस्कार है। ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवी को सतत प्रणाम है॥ १० ॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्धयै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ११ ॥

शरणागतों का कल्याण करने वाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवी को हम बारंबार नमस्कार करते हैं । नैर्ऋती (राक्षसों की लक्ष्मी), राजाओं की लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिवपत्नी) -स्वरूपा आप जगदम्बा को बार-बार नमस्कार है॥ ११ ॥

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । दन्दी
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ १२ ॥

दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकट से पार उतारने वाली), सारा (सब की सारभूता), सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवी को सर्वदा नमस्कार है ॥ १२ ॥

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः॥ १३॥

अत्यन्त सौम्य तथा अत्यन्त रौद्ररूपा देवीको हम नमस्कार करते हैं, उन्हें हमारा बारंबार प्रणाम है। जगत् की आधारभूता कृतिदेवी को बारंबार नमस्कार है ॥ १३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै॥१४॥ नमस्तस्यै ॥१५
॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥

जो देवी सब प्राणियों में विष्णुमाया के नाम से कही जाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १४-१६॥

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै॥ १७॥ नमस्तस्यै ॥ १८ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥

जो देवी सब प्राणियों में चेतना कहलाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १७- १९॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥ २० ॥ नमस्तस्यै ॥ २१ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥

जो देवी सब प्राणियों में बुद्धि रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २०-२२॥

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ २३ ॥ नमस्तस्यै ॥ २४ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥

जो देवी सब प्राणियों में निद्रारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २३- २५ ॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ २६ ॥ नमस्तस्यै। ॥ २७ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २८ ॥

जो देवी सब प्राणियों में क्षुधारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २६-२८॥

देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ २९ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३० ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३१ ॥

जो देवी सब प्राणियों में छायारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ २९- ३१ ॥

देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ३२ ॥ नमस्तस्यै॥ ३३ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३४॥

जो देवी सब प्राणियों में शक्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ३२- ३४॥

देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ३५ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३६ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३७ ॥

जो देवी सब प्राणियों में तृष्णारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ३५-३७ ॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ३८॥ नमस्तस्यै॥ ३९॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४० ॥

जो देवी सब प्राणियों में क्षान्ति (क्षमा)-रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ३८-४०॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥ ४१ ॥ नमस्तस्यै ॥ ४२ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४३ ॥

जो देवी सब प्राणियों में जातिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥४१-४३॥

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥४४॥ नमस्तस्यै ॥ ४५ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४६ ॥

जो देवी सब प्राणियों में लज्जारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ४४-४६॥

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥४७ ॥ नमस्तस्यै ॥ ४८ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४९ ॥

जो देवी सब प्राणियों में शान्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ४७-४९ ॥

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥५०॥ नमस्तस्यै ॥ ५१ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५२ ॥

जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ५०- ५२॥

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥ ५३॥ नमस्तस्यै ॥ ५४ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५५॥

जो देवी सब प्राणियों में कान्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५३-५५॥

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥५६॥ नमस्तस्यै॥ ५७॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥

जो देवी सब प्राणियों में लक्ष्मीरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ५६-५८॥

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ५९॥ नमस्तस्यै ॥ ६० ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६१ ॥

जो देवी सब प्राणियों में वृत्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५९-६१॥

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ६२॥ नमस्तस्यै ॥ ६३ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६४ ॥

जो देवी सब प्राणियों में स्मृतिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ६२-६४॥

देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ६५॥ नमस्तस्यै ॥ ६६ ॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६७॥

जो देवी सब प्राणियों में दयारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ६५ -६७॥

देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ६८ ॥ नमस्तस्यै ॥ ६९ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७० ॥

जो देवी सब प्राणियों में तुष्टिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ६८-७० ॥

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण
संस्थिता। नमस्तस्यै॥ ७१ ॥ नमस्तस्यै ॥ ७२ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७३ ॥

जो देवी सब प्राणियों में मातारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ७१- ७३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ७४॥ नमस्तस्यै ॥ ७५॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७६॥

जो देवी सब प्राणियों में भ्रान्तिरूप से स्थित हैं,उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ७४-७६॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ ७७ ॥

जो जीवों के इन्द्रियवर्ग की अधिष्ठात्री देवी एवं सब प्राणियों में सदा व्याप्त रहने वाली हैं, उन व्याप्ति देवी को बारंबार नमस्कार है॥ ७७ ॥

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै ॥ ७८॥नमस्तस्यै ॥ ७९ ॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८० ॥

जो देवी चैतन्य रूप से इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ७८- ८०॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ ८१॥

पूर्वकाल में अपने अभीष्ट की प्राप्ति होने से देवताओं ने जिनकी स्तुति की तथा देवराज इन्द्रने बहुत दिनों तक जिनका सेवन किया, वह कल्याण की साधनभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और मंगल करे तथा सारी आपत्तियोंका नाश कर डाले ॥ ८१ ॥

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः॥८२॥

उद्दण्ड दैत्यों से सताये हुए हम सभी देवता जिन परमेश्वरी को इस समय नमस्कार करते हैं तथा जो भक्ति से विनम्र पुरुषों द्वारा स्मरण की जानेपर तत्काल ही सम्पूर्ण विपत्तियों का नाश कर देती हैं, वे जगदम्बा हमारा संकट दूर करें ॥ ८२ ॥

ऋषिरुवाच॥ ८३॥
ऋषि कहते हैं॥ ८३ ॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाहनव्या नृपनन्दन॥ ८४॥

राजन्! इस प्रकार जब देवता स्तुति कर रहे थे, उस समय पार्वतीदेवी गंगाजीके जलमें स्नान करनेके लिये वहाँ आयीं॥ ८४॥

साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्धूताब्रवीच्छिवा ॥ ८५॥

उन सुन्दर भौंहों वाली भगवती ने देवताओं से पूछा- ' आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?' तब उन्हींके शरीरकोश से प्रकट हुई शिवादेवी बोलीं- ॥८५॥

स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतै:' समरे निशुम्भेन पराजितैः॥ ८६॥

'शुम्भ दैत्य से तिरस्कृत और युद्ध में निशुम्भ से पराजित हो यहाँ एकत्रित हुए ये समस्त देवता यह मेरी ही स्तुति कर रहे हैं'॥ ८६ ॥

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ८७ ॥

पार्वतीजी के शरीरकोश से अम्बिका का प्रादुर्भाव हुआ था, इसलिये वे समस्त लोकों में 'कौशिकी' कही जाती हैं॥ ८७ ॥

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया॥ ८८॥

कौशिकी के प्रकट होने के बाद पार्वतीदेवी का शरीर काले रंग का हो गया, अतः वे हिमालय पर रहने वाली कालिका देवी के नाम से विख्यात हुईं॥ ८८ ॥

ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८९॥

तदनन्तर शुम्भ-निशुम्भ के भृत्य चण्ड-मुण्ड वहाँ आये और उन्होंने परम मनोहर रूप धारण करने वाली अम्बिकादेवी को देखा ॥ ८९ ॥

ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ ९० ॥

फिर वे शुम्भ के पास जाकर बोले-'महाराज! एक अत्यन्त मनोहर स्त्री है, जो अपनी दिव्य कान्ति से हिमालय को प्रकाशित कर रही है । ९० ॥

नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥ ९१॥

वैसा उत्तम रूप कहीं किसी ने भी नहीं देखा होगा। असुरेश्वर! पता लगाइये, वह देवी कौन है और उसे ले लीजिये ॥ ९१ ॥

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥ ९२ ॥

स्त्रियों में तो वह रत्न है, उसका प्रत्येक अंग बहुत ही सुन्दर है तथा वह अपने श्रीअंगों की प्रभा से सम्पूर्ण दिशाओं में प्रकाश फैला रही है । दैत्यराज ! अभी वह हिमालय-पर ही मौजूद है, आप उसे देख सकते हैं ॥ ९२ ॥

यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे॥ ९३ ॥

प्रभो ! तीनों लोकों में मणि, हाथी और घोड़े आदि जितने भी रत्न हैं, वे सब इस समय आपके घर में शोभा पाते हैं॥ ९३ ॥

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥ ९४॥

हाथियों में रत्नभूत ऐरावत यह पारिजात का वृक्ष और यह उच्चै:श्रवा घोड़ा-यह सब आपने इन्द्र से ले लिया है॥ ९४॥

विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसो ऽद्भुतम् ॥ ९५॥

हंसों से जुता हुआ यह विमान भी आपके आगन में शोभा पाता है। यह रत्नभूत अद्भुत विमान, जो पहले ब्रह्माजी के पास था, अब आपके यहाँ लाया गया है॥ ९५ ॥

निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ९६॥

यह महापद्म नामक निधि आप कुबेर से छीन लाये हैं। समुद्र ने भी आपको किंजल्किनी नाम की माला भेंट की है, जो केसरों से सुशोभित है और जिसके कमल कभी कुम्हलाते नहीं हैं ॥ ९६ ॥

छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्त्रावि तिष्ठति।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ॥ ९७ ॥

सुवर्ण की वर्षा करने वाला वरुण का छत्र भी आपके घर में शोभा पाता है तथा यह श्रेष्ठ रथ, जो पहले प्रजापति के अधिकारमें था, अब आपके पास मौजूद है ॥ ९७ ॥

मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे॥ ९८ ॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ ९९ ॥

दैत्येश्वर! मृत्यु की उत्क्रान्तिदा नामवाली शक्ति भी आपने छीन ली है तथा वरुण का पाश और समुद्र में होने वाले सब प्रकार के रत्न आपके भाई निशुम्भ के अधिकार में हैं। अग्नि ने भी स्वत: शुद्ध किये हुए दो वस्त्र आपकी सेवा में अर्पित किये हैं॥ ९८-९९ ॥

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते॥ १०० ॥

दैत्यराज ! इस प्रकार सभी रत्न आपने एकत्र कर लिये हैं। फिर जो यह स्त्रियों में रत्नरूप कल्याणमयी देवी है, इसे आप क्यों नहीं अपने अधिकार में कर लेते ?' ॥ १०० ॥

ऋषिरुवाच॥ १०१ ॥
ऋषि कहते हैं-॥ १०१ ॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्' ॥ १०२॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु॥ १०३ ॥
चण्ड-मुण्ड का यह वचन सुनकर शुम्भ ने

महादैत्य सुग्रीव को दूत बनाकर देवी के पास भेजा और कहा- 'तुम मेरी आज्ञा से उसके सामने ये-ये बातें कहना और ऐसा उपाय करना, जिससे प्रसन्न होकर वह शीघ्र ही यहाँ आ जाय' ॥ १०२-१०३ ॥

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा॥ १०४॥

वह दूत पर्वत के अत्यन्त रमणीय प्रदेश में, जहाँ देवी मौजूद थीं, गया और मधुर वाणी में कोमल वचन बोला।॥ १०४॥

दूत उवाच॥ १०५ ॥
दूत बोला-॥ १०५ ॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ १०६ ॥

देवि! दैत्यराज शुम्भ इस समय तीनों लोकों के परमेश्वर हैं। मैं उन्हींका भेजा हुआ दूत हूँ और यहाँ तुम्हारे ही पास आया हूँ॥ १०६ ॥

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् । १०७॥

उनकी आज्ञा सदा सब देवता एक स्वर से मानते हैं। कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण देवताओं को परास्त कर चुके हैं। उन्होंने तुम्हारे लिये जो संदेश दिया है, उसे सुनो- ॥ १०७॥

मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥ १०८ ॥

'सम्पूर्ण त्रिलोकी मेरे अधिकार में है। देवता भी मेरी आज्ञा के अधीन चलते हैं । सम्पूर्ण यज्ञों के भागों को मैं ही पृथक्-पृथक् भोगता हूँ॥ १०८॥

त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥ १०९॥

तीनों लोकों में जितने श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब मेरे अधिकार में हैं। देवराज इन्द्र का वाहन ऐरावत, जो हाथियों में रत्न के समान है, मैंने छीन लिया है॥ १०९ ॥

क्षीरोदमथनोद्धूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैः श्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥ ११० ॥

क्षीरसागर का मन्थन करने से जो अश्वरत्न उच्चैःश्रवा प्रकट हुआ था, उसे देवताओं ने मेरे पैरों पर पड़कर समर्पित किया है॥ ११० ॥

यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥ १११॥

सुन्दरी! उनके सिवा और भी जितने रत्नभूत पदार्थ देवताओं, गन्धर्वों और नागों के पास थे, वे सब मेरे ही पास आ गये हैं ॥ १११ ॥

स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् |
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजों वयम् ॥ ११२॥

देवि! हमलोग तुम्हें संसार की स्त्रियों में रत्न मानते हैं, अतः तुम हमारे पास आ जाओ; क्योंकि रत्नों का उपभोग करने वाले हम ही हैं ॥ ११२ ॥

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥ ११३॥

चंचल कटाक्षों वाली सुन्दरी! तुम मेरी या मेरे भाई महापराक्रमी निशुम्भ की सेवामें आ जाओ; क्योंकि तुम रत्नस्वरूपा हो ॥ ११३ ॥

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज॥ ११४॥

मेरा वरण करने से तुम्हें तुलनारहित महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी। अपनी बुद्धि से यह विचारकर तुम मेरी पत्नी बन जाओ'॥ ११४॥

ऋषिरुवाच॥ ११५ ॥
ऋषि कहते हैं- ॥ ११५ ॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ ११६॥
दूत के यों कहने पर कल्याणमयी भगवती

दुर्गादेवी, जो इस जगत् को धारण करती हैं, मन-ही-मन गम्भीरभाव से मुसकरायीं और इस प्रकार बोलीं- ॥ ११६ ॥

देव्युवाच॥ ११७॥

देवीने कहा-॥ ११७॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः॥ ११८ ॥

दूत! तुमने सत्य कहा है, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है। शुम्भ तीनों लोकों का स्वामी है और निशुम्भ भी उसी के समान पराक्रमी है॥११८ ॥

किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम्।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा॥ ११९॥

किंतु इस विषय में मैंने जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसे मिथ्या कैसे करूँ? मैंने अपनी अल्पबुद्धि के कारण पहले से जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसे सुनो- ॥ ११९॥

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥ १२० ॥

जो मुझे संग्राम में जीत लेगा, जो मेरे अभिमान को चूर्ण कर देगा तथा संसार में जो मेरे समान बलवान् होगा, वही मेरा स्वामी होगा'॥ १२० ॥

तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णतु मे लघु।। १२१ ॥

इसलिये शुम्भ अथवा महादैत्य निशुम्भ स्वयं ही यहाँ पधारें और मुझे जीतकर शीघ्र ही मेरा पाणिग्रहण कर लें, इसमें विलम्ब की क्या आवश्यकता है?॥ १२१ ॥

दूत उवाच॥ १२२॥
दूत बोला-॥ १२२ ॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रुहि ममाग्रतः ।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥ १२३॥।

देवि! तुम घमंड में भरी हो, मेरे सामने ऐसी बातें न करो। तीनों लोकों में कौन ऐसा पुरुष है, जो शुम्भ-निशुम्भ के सामने खड़ा हो सके॥ १२३ ॥

अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका।॥ १२४ ॥

देवि! अन्य दैत्योंके सामने भी सारे देवता युद्धमें नहीं ठहर सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर कैसे ठहर सकती हो ॥ १२४॥

इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥ १२५॥

जिन शुम्भ आदि दैत्यों के सामने इन्द्र आदि सब देवता भी युद्ध में खड़े नहीं हुए, उनके सामने तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी॥ १२५ ॥

सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पाश्र्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।

केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥ १२६॥

इसलिये तुम मेरे ही कहने से शुम्भ-निशुम्भ के पास चली चलो। ऐसा करनेसे तुम्हारे गौरव की रक्षा होगी; अन्यथा जब वे केश पकड़कर घसीटेंगे, तब तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा खोकर जाना पड़ेगा ॥ १२६ ॥

देव्युवाच॥ १२७॥
देवीने कहा-॥ १२७॥

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥ १२८ ॥

तुम्हारा कहना ठीक है, शुम्भ बलवान् हैं और निशुम्भ भी बड़े पराक्रमी हैं; किंतु क्या करूँ? मैंने पहले बिना सोचे समझे प्रतिज्ञा कर ली है॥ १२८ ॥

स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु त् ॥ ॐ ॥ १२९॥

अत: अब तुम जाओ; मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह सब दैत्यराज से आदरपूर्वक कहना। फिर वे जो उचित जान पड़े, करें ॥ १२९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय पुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'देवी-दूत-संवाद' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ।॥ ५॥

श्री दुर्गासप्तशती पाठ छठा अध्याय अर्थ सहित (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण)

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

षष्ठोऽध्यायः

इस अध्याय का पाठ किसी भी प्रकार की तंत्र बाधा हटाने के लिए किया जाता है।इसके अलावा आपको लगता है कि आपके ऊपर जादू ,टोना किया गया हो,आपके परिवार को बांध दिया हो,या राहु और केतु से आप पीड़ित हो तो छठवें अध्याय का पाठ इन सभी कष्टों से आपको मुक्ति दिलाता है।

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्धासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये॥

मैं सर्वज्ञेश्वर भैरव के अंक में निवास करने वाली परमोत्कृष्ट पद्मावती देवी का चिन्तन करता हूँ। वे नागराज के आसन पर बैठी हैं, नागों के फणों में सुशोभित होने वाली मणियों की विशाल माला से उनकी देहलता उद्भासित हो रही है। सूर्य के समान उनका तेज है, तीन नेत्र उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे हाथों में माला, कुम्भ, कपाल और कमल लिये हुए हैं तथा उनके मस्तक में अर्धचन्द्र का मुकुट सुशोभित है।

ॐ' ऋषिरुवाच॥ १ ॥

ऋषि कहते हैं-॥१ ॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥ २॥

देवी का यह कथन सुनकर दूत को बड़ा अमर्ष हुआ और उसने दैत्यराज के पास जाकर सब समाचार विस्तारपूर्वक कह सुनाया॥ २ ॥

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य्यासुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥ ३ ॥

दूत के उस वचन को सुनकर दैत्यराज कुपित हो उठा और दैत्यसेनापति धूम्रलोचनसे बोला- ॥ ३ ॥

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ४ ॥

धूम्रलोचन! तुम शीघ्र अपनी सेना साथ लेकर जाओ और उस दुष्टा के केश पकड़कर घसीटते हुए उसे बलपूर्वक यहाँ ले आओ ॥ ४ ॥

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः ।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा॥ ५ ॥

उसकी रक्षा करने के लिये यदि कोई दूसरा खड़ा हो तो वह देवता, यक्ष अथवा गरन्धर्व ही क्यों न हो, उसे अवश्य मार डालना'॥ ५ ॥

ऋषिरुवाच॥ ६॥
ऋषि कहते हैं-॥६॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्त्राणामसुराणां द्रुतं ययौ॥ ७ ॥

शुम्भ के इस प्रकार आज्ञा देने पर वह धूम्रलोचन दैत्य साठ हजार असुरों की सेना को साथ लेकर वहाँसे तुरंत चल दिया॥ ७ ॥

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८ ॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्धत्तरमुपैष्यति।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ९ ॥

वहाँ पहुँचकर उसने हिमालय पर रहने वाली देवी को देखा और ललकारकर कहा- 'अरी ! तू शुम्भ-निशुम्भ के पास चल । यदि इस समय प्रसन्नतापूर्वक मेरे स्वामी के समीप नहीं चलेगी तो मैं बलपूर्वक झोंटा पकड़कर घसीटते हुए तुझे ले चलूँगा'॥ ८-९॥

देव्युवाच॥ १० ॥
देवी बोलीं-॥ १०॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ।॥ ११ ॥

तुम्हें दैत्यों के राजाने भेजा है, तुम स्वयं भी बलवान् हो और तुम्हारे साथ विशाल सेना भी है; ऐसी दशा में यदि मुझे बलपूर्वक ले चलोगे तो मैं तुम्हारा क्या कर सकती हूँ? ॥ ११ ॥

ऋषिरुवाच॥ १२॥
ऋषि कहते हैं-॥ १२॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥ १३ ॥

देवी के यों कहने पर असुर धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ा, तब अम्बिकाने 'हुं' शब्द के उच्चारणमात्र से उसे भस्म कर दिया॥ १३ ॥

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका'।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥ १४॥

फिर तो क्रोधमें भरी हुई दैत्यों की विशाल सेना और अम्बिका ने एक-दूसरे पर तीखे सायकों, शक्तियों तथा फरसों की वर्षा आरम्भ की ॥ १४॥

ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहन: ॥ १५ ॥।

इतने में ही देवी का वाहन सिंह क्रोध में भरकर भयंकर गर्जना करके गर्दन के बालों को हिलाता हुआ असुरों की सेना में कूद पड़ा ॥ १५॥

कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥ १६॥

उसने कुछ दैत्यों को पंजों की मार से, कितनों को अपने जबड़ों से और कितने ही महादैत्यों को पटककर ओठ की दाढ़ों से घायल करके मार डाला॥ १६ ॥

केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी"।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥ १७॥

उस सिंह ने अपने नखों से कितनों के पेट फाड़ डाले और थप्पड़ मारकर कितनों के सिर धड़ से अलग कर दिये॥ १७॥

विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥ १८॥

कितनों की भुजाएँ और मस्तक काट डाले तथा अपनी गर्दन के बाल हिलाते हुए उसने दूसरे दैत्यों के पेट फाड़कर उनका रक्त चूस लिया॥ १८॥

क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ १९॥

अत्यन्त क्रोध में भरे हुए देवी के वाहन उस महाबली सिंहने क्षणभर में ही असुरों की सारी सेना का संहार कर डाला॥ १९ ॥

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः॥ २०॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ॥ २१ ॥

शुम्भने जब सुना कि देवी ने धूम्रलोचन असुर को मार डाला तथा उसके सिंह ने सारी सेना का सफाया कर डाला, तब उस दैत्यराज को बड़ा क्रोध हुआ। उसका ओठ काँपने लगा। उसने चण्ड और मुण्ड नामक दो महादैत्यों को आज्ञा दी-॥ २०-२१ ॥

हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभि: परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु॥ २२ ॥
कैशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ २३॥

'हे चण्ड! और हे मुण्ड! तुमलोग बहुत बड़ी सेना लेकर वहाँ जाओ, उस देवी के झोंटे पकड़कर अथवा उसे बाँधकर शीघ्र यहाँ ले आओ। यदि इस प्रकार उसको लानेमें संदेह हो तो युद्धमें सब प्रकारके अस्त्र शस्त्रों तथा समस्त आसुरी सेना का प्रयोग करके उसकी हत्या कर डालना।॥ २२-२३॥

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम्। ॥ॐ ॥ २४॥

उस दुष्टाकी हत्या होने तथा सिंह के भी मारे जाने पर उस अम्बिका को बाँधकर साथ ले शीघ्र ही लौट आना' ॥ २४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णि के मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भ सेनानी धूम्रलोचन वधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'धूम्रलोचन- वध' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६ ॥

श्री दुर्गासप्तशती पाठ सातवां अध्याय अर्थ सहित (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण)

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

किसी भी विशेष कामना की पूर्ति के लिए सातवाँ अध्याय सर्वोत्तम है। अगर सच्चे और निर्मल दिल से माँ की पूजा की जाती है और सातवें अध्याय का पाठ किया जाता है तो व्यक्ति की कामना पूर्ति अवश्य होती हैं।

सप्तमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वरती श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
कह्वाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रं
मातङ्गीं शङ्खपत्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्धासिभालाम् ॥

मैं मातंगी देवी का ध्यान करता हूँ। वे रत्नमय सिंहासन पर बैठकर पढ़ते हुए तोते का मधुर शब्द सुन रही हैं। उनके शरीर का वर्ण श्याम है। वे अपना एक पैर कमल पर रखे हुए हैं और मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण करती हैं तथा कह्वार-पुष्पों की माला धारण किये वीणा बजाती हैं। उनके अंग में कसी हुई चोली शोभा पा रही है। वे लाल रंग की साड़ी पहने हाथ में शंखमय पात्र लिये हुए हैं। उनके वदन पर मधु का हलका-हलका प्रभाव जान पड़ता है और ललाट में बेंदी शोभा दे रही है ।

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १ ॥
ऋषि कहते हैं-॥ १॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः॥ २ ॥

तदनन्तर शुम्भ की आज्ञा पाकर वे चण्ड-मुण्ड आदि दैत्य चतुरंगिणी सेना के साथ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो चल दिये॥ २॥

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥ ३ ॥

फिर गिरिराज हिमालय के सुवर्णमय ऊँचे शिखर पर पहुँचकर उन्होंने सिंहप र बैठी देवी को देखा। वे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं॥ ३॥

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ ४ ॥

उन्हें देखकर दैत्यलोग तत्परता से पकड़ने का उद्योग करने लगे। किसी ने धनुष तान लिया, किसी ने तलवार सँभाली और कुछ लोग देवी के पास आकर खड़े हो गये॥ ४॥

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं मषींवर्णमभूत्तदा ॥ ५ ॥

तब अम्बिका ने उन शत्रुओं के प्रति बड़ा क्रोध किया। उस समय क्रोध के कारण उनका मुख काला पड़ गया॥ ५॥

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्भुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥ ६ ॥

ललाट में भौंहें टेढ़ी हो गयीं और वहाँ से तुरंत विकराल मुखी काली प्रकट हुईं, जो तलवार और पाश लिये हुए थीं ॥ ६ ॥

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ ७ ॥

वे विचित्र खट्वांग धारण किये और चीते के चर्म की साड़ी पहने नर-मुण्डों की माला से विभूषित थीं। उनके शरीर का मांस सूख गया था, केवल हड्डियों का ढाँचा था, जिससे वे अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थीं॥ ७॥

अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ ८ ॥

उनका मुख बहुत विशाल था, जीभ लपलपाने के कारण वे और भी डरावनी प्रतीत होती थीं उनकी आँखें भीतर को धँसी हुई और कुछ लाल थीं, वे अपनी भयंकर गर्जना से सम्पूर्ण दिशाओं को गुँजा रही थीं॥ ८॥

सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ ९॥

बड़े-बड़े दैत्यों का वध करती हुई वे कालिका देवी बड़े वेग से दैत्यों की उस सेनापर टूट पड़ीं और उन सबको भक्षण करने लगीं ॥ ९ ॥

पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्॥ १०॥

वे पार्श्वरक्ष कों, अंकुशधारी महावतों, योद्धाओं और घण्टा सहित कितने ही हाथियों को एक ही हाथ से पकड़कर मुँह में डाल लेती थीं॥ १० ॥

तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥ ११॥

इसी प्रकार घोड़े, रथ और सारथि के साथ रथी सैनिकों को मुँह में डालकर वे उन्हें बड़े भयानक रूप से चबा डालती थीं॥ ११ ॥

एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥ १२ ॥

किसी के बाल पकड़ लेतीं, किसी का गला दबा देतीं, किसी को पैरों से कुचल डालतीं और किसी को छाती के धक्के से गिराकर मार डालती थीं॥ १२ ॥

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥ १३ ॥

वे असुरों के छोड़े हुए बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र मुँहसे पकड़ लेतीं और रोष में भरकर उनको दाँतों से पीस डालती थीं॥ १३ ॥

ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा।
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।॥ १४॥

काली ने बलवान् एवं दुरात्मा दैत्यों की वह सारी सेना रौंद डाली, खा डाली और कितनों को मार भगाया॥ १४॥

असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥ १५ ॥

कोई तलवार के घाट उतारे गये, कोई खट्वांग से पीटे गये और कितने ही असुर दाँतों के अग्रभाग से कुचले जाकर मृत्यु को प्राप्त हुए॥ १५॥

क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार देवी ने असुरों की उस सारी सेना को क्षणभर में मार गिराया। यह देख चण्ड उन अत्यन्त भयानक कालीदेवी की ओर दौड़ा॥ १६॥

शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहसत्रशः॥ १७ ॥

तथा महादैत्य मुण्डने भी अत्यन्त भयंकर बाणों की वर्षा से तथा हजारों बार चलाये हुए चक्रों से उन भयानक नेत्रों वाली देवी को आच्छादित कर दिया ॥ १७ ॥

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥ १८॥

वे अनेकों चक्र देवी के मुख में समाते हुए ऐसे जान पड़े, मानो सूर्य के बहुतेरे मण्डल बादलों के उदर में प्रवेश कर रहे हों ॥ १८ ॥

ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
कालीकरालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१९ ॥

तब भयंकर गर्जना करने वाली काली ने अत्यन्त रोष में भरकर विकट अट्टहास किया। उस समय उनके विकराल वदन के भीतर कठिनता से देखे जा सकने वाले दाँतों की प्रभा से वे अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देती थीं॥ १९॥

उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्* ॥ २०॥

देवी ने बहुत बड़ी तलवार हाथ में ले ' हं का उच्चारण करके चण्ड पर धावा किया और उसके केश पकड़कर उसी तलवार से उसका मस्तक काट डाला ॥ २० ॥

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद्भमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥ २१॥

चण्ड को मारा गया देखकर मुण्ड भी देवी की ओर दौड़ा। तब देवी ने रोष में भरकर उसे भी तलवार से घायल करके धरती पर सुला दिया॥ २१ ॥

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥ २२॥

महापराक्रमी चण्ड और मुण्ड को मारा गया देख मरने से बची हुई बाकी सेना भय से व्याकुल हो चारों ओर भाग गयी॥ २२ ॥

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ २३॥

तदनन्तर काली ने चण्ड और मुण्डका मस्तक हाथ में ले चण्डिका के पास जाकर प्रचण्ड अट्टहास करते हुए कहा-॥ २३॥

मया तवात्रोपहतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥ २४॥

'देवि! मैंने चण्ड और मुण्ड नामक इन दो महापशुओं को तुम्हें भेंट किया है। अब युद्धयज्ञ में तुम शुम्भ और निशुम्भ का स्वयं ही वध करना' ॥ २४ ॥

ऋषिरुवाच॥ २५ ॥
ऋषि कहते हैं-॥ २५ ॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥ २६ ॥

वहाँ लाये हुए उन चण्ड-मुण्ड नामक महादैत्यों को देखकर कल्याणमयी चण्डी ने काली से मधुर वाणी में कहा-॥२६॥

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥ ॐ॥ २७ ॥

'देवि! तुम चण्ड और मुण्ड को लेकर मेरे पास आयी हो, इसलिये संसार में चामुण्डा के नाम से तुम्हारी ख्याति होगी' ॥ २७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णि के मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'चण्ड-मुण्ड-वध' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ।॥ ७ ॥

श्री दुर्गासप्तशती पाठ आठवां अध्याय अर्थ सहित (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण)

अगर आपका कोई प्रिय आपसे बिछड़ गया हैं, कोई गुमशुदा है और आप उसे ढूँढकर थक चूके हैं तो आठवें अध्याय का पाठ चमत्कारिक फल प्रदान करता है। बिछड़े हुए लोगों से मिलने के लिए। इसके अलावा वशीकरण के लिए भी इस अध्याय का पाठ किया जाता है,लेकिन वशीकरण सही व्यक्ति के लिए किया जा रहा है, सही मंशा के साथ किया जा रहा हो, इसका ध्यान रखना बहुत आवश्यक है,नहीं तो फायदे की जगह नुकसान हो सकता है। इसके अलावा धन लाभ के लिए धन प्राप्ति के लिए भी आठवें अध्याय का पाठ बेहद शुभ माना जाता है।

अष्टमोध्याय

ध्यानम्

अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं
धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम्
अणिमादिभिरावृतां मयूखै-
रहमित्येव विभावये भवानीम्॥

मैं अणिमा आदि सिद्धिमयी किरणों से आवृत भवानी का ध्यान करता हूँ। उनके शरीर का रंग लाल है, नेत्रों में करुणा लहरा रही है तथा हाथों में पाश, अंकुश, बाण और धनुष शोभा पाते हैं।

ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

ऋषि कहते हैं-॥ १॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ २ ॥
ततः कोपपराधीनचेता: शुम्भः प्रतापवान्।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ ३ ॥

चण्ड और मुण्ड नामक दैत्यों के मारे जाने तथा बहुत-सी सेना का संहार हो जाने पर दैत्यों के राजा प्रतापी शुम्भ के मन में बड़ा क्रोध हुआ और उसने दैत्यों की सम्पूर्ण सेना को युद्ध के लिये कूच करने की आज्ञा दी॥ २-३॥

अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्य्यान्तु स्वबलैर्वृताः॥ ४॥

वह बोला-'आज उदायुध नाम के छियासी दैत्य-सेनापति अपनी सेनाओं के साथ युद्ध के लिये प्रस्थान करें । कम्बु नाम वाले दैत्यों के चौरासी सेनानायक अपनी वाहिनी से घिरे हुए यात्रा करें ॥ ४ ॥

कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै।र
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ ५ ॥

पचास कोटिवीर्य-कुल के और सौ धौम्र-कुल के असुर सेनापति मेरी आज्ञा से सेना सहित कूच करें ॥ ५ ॥

कालका दौर्हदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निय्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥ ६ ॥

कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय असुर भी युद्ध के लिये तैयार हो मेरी आज्ञा से तुरंत प्रस्थान करें' ॥ ६ ॥

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।
निर्जगाम महासैन्यसहस्त्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ ७ ॥

भयानक शासन करने वाला असुरराज शुम्भ इस प्रकार आज्ञा दे सहस्रों बड़ी-बड़ी सेनाओं के साथ युद्ध के लिये प्रस्थित हुआ॥ ७॥

आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम्॥ ८ ॥

उसकी अत्यन्त भयंकर सेना आती देख चण्डिका ने अपने धनुष की टंकार से पृथ्वी और आकाश के बीच का भाग गुँजा दिया॥ ८॥

ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥ ९ ॥

राजन् ! तदनन्तर देवी के सिंह ने भी बड़े जोर-जोर से दहाड़ना आरम्भ किया, फिर अम्बिका ने घण्टे के शब्द से उस ध्वनि को और भी बढ़ा दिया॥ ९ ॥

धनुर्ज्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारिताननना ॥ १० ॥

धनुष की टंकार, सिंह की दहाड़ और घण्टे की ध्वनि से सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं । उस भयंकर शब्द से काली ने अपने विकराल मुख को और भी बढ़ा लिया तथा इस प्रकार वे विजयिनी हुईं॥ १० ॥

तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः॥ ११॥

उस तुमुल नाद को सुनकर दैत्यों की सेनाओं ने चारों ओर से आकर चण्डिका देवी, सिंह तथा कालीदेवी को क्रोधपूर्वक घेर लिया ॥ ११ ॥

एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥ १२॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥ १३ ॥

राजन् इसी बीच में असुरों के विनाश तथा देवताओं के अभ्युदय के लिये ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवों की शक्तियाँ, जो अत्यन्त पराक्रम और बल से सम्पन्न थीं, उनके शरीरों से निकलकर उन्हीं के रूपमें चण्डिकादेवी के पास गयीं॥ १२-१३॥

यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥ १४॥

जिस देवता का जैसा रूप, जैसी वेश- भूषा और जैसा वाहन है, ठीक वैसे ही साधनों से सम्पन्न हो उसकी शक्ति असुरों से युद्ध करने के लिये आयी॥ १४॥

हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥ १५॥

सबसे पहले हंसयुक्त विमान पर बैठी हुई अक्षसूत्र और कमण्डलु से सुशोभित ब्रह्माजी की शक्ति उपस्थित हुई, जिसे 'ब्रह्माणी' कहते हैं॥ १५ ॥

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥ १६॥

महादेवजी की शक्ति वृषभ पर आरूढ़ हो हाथों में श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये महानाग का कंकण पहने, मस्तक में चन्द्रेखा से विभूषित हो वहाँ आ पहुँची॥ १६ ॥

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥ १७ ॥

कार्तिकेयजी की शक्ति रूपा जगदम्बिका उन्हीं का रूप धारण किये श्रेष्ठ मयूर पर आरूढ़ हो हाथ में शक्ति लिये दैत्यों से युद्ध करने के लिये आयीं ॥ १७॥

तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता।
शङ्खचक्रगदाशाङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१८॥

इसी प्रकार भगवान् विष्णु की शक्ति गरुड़ पर विराजमान हो शंख, चक्र, गदा, शाङ्र्गधनुष तथा खड्ग हाथ में लिये वहाँ आयी॥ १८॥

यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो' हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम्।॥ १९ ॥

अनुपम यज्ञवाराह का रूप धारण करने वाले श्रीहरि की जो शक्ति है, वह भी वाराह-शरीर धारण करके वहाँ उपस्थित हुई॥ १९ ॥

नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥ २०॥

नारसिंही शक्ति भी नृसिंह के समान शरीर धारण करके वहाँ आयी। उसकी गर्दन के बालों के झटके से आकाश के तारे बिखरे पड़ते थे ॥ २० ॥

वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता ।
प्राप्ता सहस्त्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥ २१ ॥

इसी प्रकार इन्द्र की शक्ति वज्र हाथ में लिये गजराज ऐरावत पर बैठकर आयी। उसके भी सहस्त्र नेत्र थे। इन्द्र का जैसा रूप है, वैसा ही उसका भी था ॥ २१ ॥

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभि: ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर उन देव-शक्तियों से घिरे हुए महादेवजी ने चण्डिकाबसे कहा- 'मेरी प्रसन्नता के लिये तुम शीघ्र ही इन असुरों का संहार करो' ॥ २२ ॥

ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥ २३ ॥

तब देवी के शरीर से अत्यन्त भयानक और परम उग्र चण्डिका- शक्ति प्रकट हुई। जो सैकड़ों गीदड़ियों की भाँति आवाज करने वाली थी ॥ २३ ॥

चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ २४॥

उस अपराजिता देवी ने धूमिल जटावाले महादेवजी से कहा- भगवन्! आप शुम्भ-निशुम्भ के पास दूत बनकर जाइये ॥ २४॥

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्त्र युद्धाय समुपस्थिताः॥ २५ ॥

और उन अत्यन्त गवीले दानव शुम्भ एवं निशुम्भ दोनों से कहिये। साथ ही उनके अतिरिक्त भी जो दानव युद्ध के लिये वहाँ उपस्थित हों उनको भी यह संदेश दीजिये- ॥२५ ॥

त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ॥ २६॥

'दैत्यो ! यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो पाताल को लौट जाओ । इन्द्रको त्रिलोकी का राज्य मिल जाय और देवता यज्ञभाग का उपभोग करें॥ २६ ॥

बलावलेपादथ चेद्धवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः ।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥ २७ ॥

यदि बल के घमंड में आकर तुम युद्ध की अभिलाषा रखते हो तो आओ। मेरी शिवाएँ (योगिनियाँ) तुम्हारे कच्चे मांस से तृप्त हों' ॥ २७ ॥

यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥ २८ ॥

चूँकि उस देवी ने भगवान् शिव को दूत के कार्य में नियुक्त किया था, इसलिये वह 'शिवदूती' के नाम से संसार में विख्यात हुई।॥ २८ ॥

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता।॥ २९ ॥

वे महादैत्य भी भगवान् शिव के मुँह से देवी के वचन सुनकर क्रोध में भर गये और जहाँ कात्यायनी विराजमान थीं, उस ओर बढ़े॥ २९ ॥

ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥ ३० ॥

तदनन्तर वे दैत्य अमर्ष में भरकर पहले ही देवी के ऊपर बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे ॥ ३० ॥

सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ ३१ ॥

तब देवी ने भी खेल-खेल में ही धनुष की टंकार की और उससे छोड़े हुए बड़े-बड़े बाणों द्वारा दैत्यों के चलाये हुए बाण, शूल, शक्ति और फरसों को काट डाला॥ ३१ ॥

तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान्।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥ ३२ ॥

फिर काली उनके आगे होकर शत्रुओं को शूलके प्रहार से विदीर्ण करने लगी और खट्वांग से उनका कचूमर निकालती हुई रणभूमि में विचरने लगी॥ ३२ ॥

कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥ ३३॥

ब्रह्माणी भी जिस-जिस ओर दौड़ती, उसी-उसी ओर अपने कमण्डलु का जल छिड़ककर शत्रुओं के ओज और पराक्रम को नष्ट कर देती थी॥ ३३ ॥

माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥ ३४॥

माहेश्वरी ने त्रिशूल से तथा वैष्णवी ने चक्र से और अत्यन्त क्रोध में भरी हुई कुमार कार्तिकेय की शक्ति ने शक्ति से दैत्यों का संहार आरम्भ किया॥ ३४॥

ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ ३५॥

इन्द्रशक्ति के वज्रप्रहार से विदीर्ण हो सैकड़ों दैत्य-दानव रक्तकी धारा बहाते हुए पृथ्वी पर सो गये ॥ ३५ ॥

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥ ३६ ॥

वाराही शक्ति ने कितनों को अपनी थूथुन की मार से नष्ट किया, दाढ़ों के अग्रभाग से कितनों की छाती छेद डाली तथा कितने ही दैत्य उसके चक्र की चोट से विदीर्ण होकर गिर पड़े॥ ३६॥

नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान्।
नारसिंही चर्चाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥ ३७॥

नारसिंही भी दूसरे-दूसरे महादैत्यों को अपने नखों से विदीर्ण करके खाती और सिंहनाद से दिशाओं एवं आकाश को गुँजाती हुई युद्धक्षेत्र में विचरने लगी॥ ३७ ॥

चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥ ३८ ॥

कितने ही असुर शिवदूती के प्रचण्ड अट्टहास से अत्यन्त भयभीत हो पृथ्वी पर गिर पड़े और गिरने पर उन्हें शिवदूती ने उस समय अपना ग्रास बना लिया॥ ३८॥

इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्दैवारिसैनिकाः ॥३९॥

इस प्रकार क्रोध में भरे हुए मातृगणों को नाना प्रकार के उपायों से बड़े- बड़े असुरों का मर्दन करते देख दैत्य सैनिक भाग खड़े हुए॥ ३९ ॥

पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः॥ ४०॥

मातृगणों से पीड़ित दैत्यों को युद्ध से भागते देख रक्तबीज नामक महादैत्य क्रोध में भरकर युद्ध करने के लिये आया॥ ४० ॥

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥ ४१ ॥

उसके शरीर से जब रक्त की बूँद पृथ्वी पर गिरती, तब उसी के समान शक्तिशाली एक दूसरा महादैत्य पृथ्वी पर पैदा हो जाता॥ ४१ ॥

ययुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥ ४२ ॥

महासुर रक्तबीज हाथमें गदा लेकर इन्द्र शक्ति के साथ युद्ध करने लगा। तब ऐन्द्री ने अपने वज्र से रक्तबीज को मारा।।४२ ॥

कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ।

समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्भूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ४३॥

वज्र से घायल होने पर उसके शरीर से बहुत-सा रक्त चूने लगा और उससे उसी के समान रूप तथा पराक्रम वाले योद्धा उत्पन्न होने लगे ॥ ४३ ॥

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः॥ ४४॥

उसके शरीर से रक्त की जितनी बूँदें गिरीं, उतने ही पुरुष उत्पन्न हो गये वे सब रक्तबीज के समान ही वीर्यवान्, बलवान् तथा पराक्रमी थे॥ ४४॥

ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥ ४५ ॥

वे रक्त से उत्पन्न होने वाले पुरुष भी अत्यन्त भयंकर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करते हुए वहाँ मातृगणों के साथ घोर युद्ध करने लगे॥ ४५ ॥

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः॥ ४६॥

पुनः वज्र के प्रहार से जब उसका मस्तक घायल हुआ, तब रक्त बहने लगा और उससे हजारों पुरुष उत्पन्न हो गये॥४६॥

वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह ।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥ ४७॥

वैष्णवी ने युद्ध में रक्तबीज पर चक्र का प्रहार किया तथा ऐन्द्री ने उस दैत्य सेनापति को गदा से चोट पहुँचायी॥ ४७ ॥

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्त्रावसम्भवैः ।
सहस्त्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ ४८ ॥

वैष्णवी के चक्र से घायल होने पर उसके शरीर से जो रक्त बहा और उससे जो उसी के बराबर आकार वाले सहस्रों महादैत्य प्रकट हुए, उनके द्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया॥ ४८ ॥

शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥४९॥

कौमारी ने शक्ति से, वाराही ने खड्ग से और माहेश्वरी ने त्रिशूल से महादैत्य रक्तबीज को घायल किया॥ ४९ ॥

स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥ ५० ॥

क्रोध में भरे हुए उस महादैत्य रक्तबीज ने भी गदा से सभी मातृ-शक्तियों पर पृथक्-पृथक् प्रहार किया॥ ५०॥

तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः॥ ५१ ॥

शक्ति और शूल आदि से अनेक बार घायल होने पर जो उसके शरीर से रक्त की धारा पृथ्वी पर गिरी, उससे भी निश्चय ही सैकड़ों असुर उत्पन्न हुए॥ ५१ ॥

तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ ५२॥

इस प्रकार उस महादैत्य के रक्त से प्रकट हुए असुरों द्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। इससे उन देवताओं को बड़ा भय हुआ॥ ५२ ॥

तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्ण* वदनं कुरु ॥ ५३॥

देवताओं को उदास देख चण्डिका ने काली से शीघ्रतापूर्वक कहा-'चामुण्डे! तुम अपना मुख और भी फैलाओ॥ ५३ ॥

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ।॥ ५४ ॥

तथा मेरे शस्त्रपात से गिरने वाले रक्तबिन्दुओं और उनसे उत्पन्न होने वाले महादैत्यों को तुम अपने इस उतावले मुख से खा जाओ ॥ ५४॥

भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान्।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥ ५५॥

इस प्रकार रक्त से उत्पन्न होने वाले महादैत्यों का भक्षण करती हुई तुम रण में विचरती रहो। ऐसा करने से उस दैत्य का सारा रक्त क्षीण हो जाने पर वह स्वयं भी नष्ट हो जायगा॥ ५५॥

भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥ ५६॥

उन भयंकर दैत्यों को जब तुम खा जाओगी, तब दूसरे नये दैत्य उत्पन्न नहीं हो सकेंगे।' कालीसे यों कहकर चण्डिकादेवी ने शूल से रक्तबीज को मारा॥ ५६॥

मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम्॥५७॥

और काली ने अपने मुख में उसका रक्त ले लिया। तब उसने वहाँ चण्डिका पर गदा से प्रहार किया॥ ५७॥

न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्त्राव शोणितम् ॥ ५८॥

किंतु उस गदापात ने देवी को तनिक भी वेदना नहीं पहुँचायी। रक्तबीज के घायल शरीर से बहुत-सा रक्त गिरा॥ ५८॥

यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः॥ ५९॥
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥ ६०॥

जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ॥ ६१॥
नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप॥ ६२॥

किंतु ज्यों ही वह गिरा त्यों ही चामुण्डा ने उसे अपने मुख में ले लिया। रक्त गिरने से काली के मुख में जो महादैत्य उत्पन्न हुए, उन्हें भी वह चट कर गयी और उसने रक्तबीज का रक्त भी पी लिया। तदनन्तर देवी ने रक्तबीज को, जिसका रक्त चामुण्डा ने पी लिया था, वज्र, बाण, खड्ग तथा ऋष्टि आदि से मार डाला। राजन्! इस प्रकार शस्त्रोंके समुदायसे आहत एवं रतक्तहीन हुआ महादैत्य रक्तबीज पृथ्वी पर गिर पड़ा। नरेश्वर ! इससे देवताओं को अनुपम हर्ष की प्राप्ति हुई॥ ५९-६२॥

तेषां मातृगणो जातो ननतर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ ॐ॥ ६३ ॥

और मातृगण उन असुरों के रक्तपान के मद से उद्धत-सा होकर नृत्य करने लगा॥ ६३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'रक्तबीज-वध' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ।॥ ८॥

श्री दुर्गासप्तशती पाठ नौवां अध्याय अर्थ सहित (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण)

नौवा अध्याय का पाठ संतान के लिए किया जाता है। पुत्र प्राप्ति के लिए या संतान से संबंधित किसी भी परेशानी के निवारण के लिए दुर्गा सप्तशती के नवम अध्याय का पाठ किया जाता है। इसके अलावा संतान की उन्नति प्रगति के लिए तथा किसी भी प्रकार की खोई हुई अमूल्य वस्तु की प्राप्ति के लिए भी नौवें अध्याय का पाठ करना उत्तम होता है। यह आपकी हर मनोकामना पूर्ण करने में सहायक है।

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

नवमोऽध्यायः निशुम्भ-वध

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिरभं रुचिराक्षमालां
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः ।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ॥

मैं अर्धनारीश्वर के श्रीविग्रहबकी निरन्तर शरण लेता हूँ। उसका वर्ण बन्धूक पुष्प और सुवर्ण के समान रक्त-पीतमिश्रित है। वह अपनी भुजाओं में सुन्दर अक्षमाला, पाश, अंकुश और वरद-मुद्रा धारण करता है; अर्धचन्द्र उसका आभूषण है तथा वह तीन नेत्रोंसे सुशोभित है ।

ॐ' राजोवाच ॥ १॥

राजा ने कहा-॥१॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥ २॥

भगवन्! आपने रक्तबीज के वध से सम्बन्ध रखने-वाला देवी-चरित्र का यह अद्भुत माहात्म्य मुझे बतलाया ॥ २ ॥

भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥ ३ ॥

अब रक्तबीज के मारे जाने पर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए शुम्भ और निशुम्भने जो कर्म किया, उसे में सुनना चाहता हूँ॥ ३॥

ऋषिरुवाच॥ ४॥
ऋषि कहते हैं-॥४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥ ५ ॥

राजन्! युद्ध में रक्तबीज तथा अन्य दैत्यों के मारे जाने पर शुम्भ और निशुम्भ के क्रोधकी सीमा न रही।॥ ५ ॥

हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्गहन्।
अभ्यधावन्नि शुम्भोऽथ मुख्यासुरसेनया ॥ ६ ॥

अपनी विशाल सेना इस प्रकार मारी जाती देख निशुम्भ अमर्में भरकर देवी की ओर दौड़ा। उसके साथ असुरों की प्रधान सेना थी॥ ६॥

तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः॥ ७ ॥

उसके आगे, पीछे तथा पार्श्व भाग में बड़े-बड़े असुर थे, जो क्रोध से ओठ चबाते हुए देवी को मार डालने के लिये आये॥ ७ ॥

आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥ ८ ॥

महापराक्रमी शुम्भ भी अपनी सेना के साथ मातृगणों से युद्ध करके क्रोधवश चण्डिका को मारने के लिये आ पहुँचा॥ ८॥

ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः ।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥ ९ ॥

तब देवी के साथ शुम्भ और निशुम्भ का घोर संग्राम छिड़ गया। वे दोनों दैत्य मेघों की भाँति बाणों की भयंकर वृष्टि कर रहे थे ॥ ९ ॥

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः ।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥ १० ॥

उन दोनों के चलाये हुए बाणों को चण्डिका ने अपने बाणों के समूह से तुरंत काट डाला और शस्त्रसमूहों की वर्षा करके उन दोनों दैत्यपतियों के अंगों में भी चोट पहुँचायी॥ १० ॥

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम्।
अताडयन्मूर्धिनि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥ ११ ॥

निशुम्भ ने तीखी तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर देवी के श्रेष्ठ वाहन सिंह के मस्तक पर प्रहार किया॥ ११ ॥

ताड़िते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुक्तमम्।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्ट चन्द्रकम्॥ १२ ॥

अपने वाहन को चोट पहुँचने पर देवी ने क्षुरप्र नामक बाण से निशुम्भ की श्रेष्ठ तलवार तुरंत ही काट डाली और उसकी ढाल को भी, जिसमें आठ चाँद जड़े थे, खण्ड-खण्ड कर दिया॥ १२॥

छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभि मुखागताम्॥ १३॥

ढाल और तलवार के कट जाने पर उस असुर ने शक्ति चलायी, किंतु सामने आने पर देवी ने चक्र से उसके भी दो टुकड़े कर दिये॥ १३ ॥

कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः।
आयात मुष्टिपातेन देवी तच्चाण्यचूर्णयत् ॥ १४ ॥

अब तो निशुम्भ क्रोध से जल उठा और उस दानव ने देवी को मारने के लिये शूल उठाया; किंतु देवी ने समीप आने पर उसे भी मुक्के से मारकर चूर्ण कर दिया॥ १४॥

आविध्यार्थ गरदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥ १५ ॥

तब उसने गदा घुमाकर चण्डी के ऊपर चलायी, परंतु वह भी देवी के त्रिशूल से कटकर भस्म हो गयी ॥ १५॥

ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम्।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥ १६॥

तदनन्तर दैत्यराज निशुम्भ को फरसा हाथ में लेकर आते देख देवी ने बाणसमूहों से घायलकर धरती पर सुला दिया॥ १६ ॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥ १७॥

उस भयंकर पराक्रमी भाई निशुम्भ के धराशायी हो जाने पर शुम्भ को बड़ा क्रोध हुआ और अम्बिका का वध करने के लिये वह आगे बढ़ा ॥ १७ ॥

रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥ १८॥

रथपर बैठे-बैठे ही उत्तम आयुधों से सुशोभित अपनी बड़ी-बड़ी आठ अनुपम भुजाओं से समूचे आकाश को ढककर वह अद्भुत शोभा पाने लगा ॥ १८॥

तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥ १९॥

उसे आते देख देवी ने शंख बजाया और धनुष की प्रत्यंचाका भी अत्यन्त दुस्सह शब्द किया॥ १९॥

पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥ २०॥

साथ ही अपने घण्टे के शब्द से, जो समस्त दैत्यसैनिकों का तेज नष्ट करने वाला था, सम्पूर्ण दिशाओं को व्याप्त कर दिया॥ २०॥

ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।
पूरयामास गगनं गां तथैव * दिशो दश॥ २१ ॥

तदनन्तर सिंह ने भी अपनी दहाड़ से, जिसे सुनकर बड़े-बड़े गजराजों का महान् मद दूर हो जाता था, आकाश, पृथ्वी और दसों दिशाओं को गुँजा दिया॥ २१ ॥

ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः॥ २२ ॥

फिर काली ने आकाश में उछलकर अपने दोनों हाथों से पृथ्वी पर आघात किया। उससे ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जिससे पहले के सभी शब्द शान्त हो गये॥ २२॥

अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥ २३॥

तत्पश्चात् शिवदूती ने दैत्यों के लिये अमंगल जनक अट्टहास किया, इन शब्दों को सुनकर समस्त असुर थर्रा उठे; किंतु शुम्भ को बड़ा क्रोध हुआ॥ २३ ॥

दूरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा |
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥ २४॥

उस समय देवी ने जब शुम्भ को लक्ष्य करके कहा - 'ओ दुरात्मन् ! खड़ा रह, खड़ा रह', तभी आकाश में खड़े हुए देवता बोल उठे - ' जय हो, जय हो' ॥ २४॥

शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥ २५ ॥

शुम्भ ने वहाँ आकर ज्वालाओं से युक्त अत्यन्त भयानक शक्ति चलायी। अग्निमय पर्वत के समान आती हुई उस शक्ति को देवी ने बड़े भारी लूके से दूर हटा दिया॥ २५ ॥

सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥ २६ ॥

उस समय शुम्भ के सिंहनाद से तीनों लोक गूँज उठे। राजन्! उसकी प्रतिध्वनि से वज्रपात के समान भयानक शब्द हुआ, जिसने अन्य सब शब्दों को जीत लिया॥ २६ ॥

शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।

चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्त्रशः ॥ २७॥

शुम्भ के चलाये हुए बाणों के देवी ने और देवी के चलाये हुए बाणों के शुम्भ ने अपने भयंकर बाणों द्वारा सैकड़ों और हजारों टुकड़े कर दिये॥ २७॥

ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह॥ २८॥

तब क्रोध में भरी हुई चण्डिका ने शुम्भ को शूल से मारा। उसके आघात से मूर्च्छित हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २८॥

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा॥ २९॥

इतने में ही निशुम्भ को चेतना हुई और उसने धनुष हाथ में लेकर बाणों द्वारा देवी, काली तथा सिंह को घायल कर डाला॥ २९ ॥

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥ ३० ॥

फिर उस दैत्यराज ने दस हजार बाँहें बनाकर चक्रों के प्रहार से चण्डिका को आच्छादित कर दिया॥ ३० ॥

ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥ ३१ ॥

तब दुर्गम पीड़ा का नाश करने वाली भगवती दुर्गा ने कुपित होकर अपने बाणों से उन चक्रों तथा बाणों को काट गिराया॥ ३१ ॥

ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम्।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥ ३२॥

यह देख निशुम्भ दैत्यसेना के साथ चण्डिका का वध करने के लिये हाथ में गदा ले बड़े वेग से दौड़ा॥ ३२ ॥

तस्यापतत एवाशु गरदां चिच्छेद चण्डका ।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समादे ॥ ३३ ॥

उसके आते ही चण्डी ने तीखी धारवाली तलवार से उसकी गदा को शीघ्र ही काट डाला। तब उसने शूल हाथ में ले लिया॥ ३३ ॥

शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरादनम् ।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥ ३४ ॥

देवताओं को पीड़ा देने वाले निशुम्भ को शूल हाथ में लिये आते देख चण्डिका ने वेग से चलाये हुए अपने शूल से उसकी छाती छेद डाली॥ ३४॥

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥ ३५ ॥

शूल से विदीर्ण हो जाने पर उसकी छाती से एक दूसरा महाबली एवं महापराक्रमी पुरुष 'खड़ी रह, खड़ी रह ' कहता हुआ निकला॥ ३५ ॥

तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥ ३६ ॥

उस निकलते हुए पुरुष की बात सुनकर देवी ठठाकर हँस पड़ीं और खड्ग से उन्होंने उसका मस्तक काट डाला। फिर तो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा॥ ३६॥

ततः सिंहश्चखादोग्र दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥ ३७॥

तदनन्तर सिंह अपनी दाढ़ों से असुरों की गर्दन कुचलकर खाने लगा, यह बड़ा भयंकर दृश्य था। उधर काली तथा शिवदूती ने भी अन्यान्य दैत्यों का भक्षण आरम्भ किया॥ ३७ ॥

कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृता: ॥ ३८॥

कौमारी की शक्ति से विदीर्ण होकर कितने ही महादैत्य नष्ट हो गये ब्रह्माणी के मन्त्रपूत जल से निस्तेज होकर कितने ही भाग खड़े हुए॥ ३८॥

माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥ ३९॥

कितने ही दैत्य माहेश्वरी के त्रिशूल से छिन्न-भिन्न हो धराशायी हो गये वाराही के थूथुन के आघात से कितनों का पृथ्वी पर कचूमर निकल गया ॥ ३९ ॥

खण्ड खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥ ४०॥

वैष्णवी ने भी अपने चक्र से दानवों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ऐन्द्री के हाथ से छूटे हुए वज्र से भी कितने ही प्राणों से हाथ धो बैठे ॥ ४० ॥

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात्।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ ॐ ॥ ४१ ॥

कुछ असुर नष्ट हो गये, कुछ उस महायुद्ध से भाग गये तथा कितने ही काली, शिवदूती तथा सिंह के ग्रास बन गये॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णि के मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराण में सारवर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'निशुम्भ-वध' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ।॥९ ॥

श्री दुर्गासप्तशती पाठ दसवां अध्याय अर्थ सहित (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण (दशमोध्याय)

अगर संतान गलत रास्ते पर जा रही है तो ऐसी भटकी हुई संतान को सही रास्ते पर लाने के लिए दसवां अध्याय सर्वश्रेष्ठ है। अच्छे और योग्य पुत्र की कामना के साथ अगर दसवें अध्याय का पाठ किया जाए, तो योग्य संतान की प्राप्ति होती हैं और प्राप्त संतान सही रास्ते पर चलती है।

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

दशमोऽध्यायः शुम्भ-वध

ध्यानम्

ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवहिन-
नेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम् ।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम् ॥

मैं मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण करने वाली शिवशक्ति स्वरूपा भगवती कामेश्वरी का हृदय में चिन्तन करता हूँ। वे तपाये हुए सुवर्ण के समान सुन्दर हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि - ये ही तीन उनके नेत्र हैं तथा वे अपने मनोहर हाथों में धनुष-बाण, अंकुश, पाश और शूल धारण किये हुए हैं।

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १ ॥
ऋषि कहते हैं-॥ १ ॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥

राजन्! अपने प्राणों के समान प्यारे भाई निशुम्भ को मारा गया देख तथा सारी सेना का संहार होता जान शुम्भने कुपित होकर कहा- ॥२ ॥

बलावलेपाद्युष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी॥ ३ ॥

'दुष्ट दुर्गे! तू बल के अभिमान में आकर झूठ-मूठ का घमंड न दिखा। तू बड़ी मानिनी बनी हुई है, किंतु दूसरी स्त्रियों के बल का सहारा लेकर लड़ती है'॥ ३ ॥

देव्युवाच॥ ४॥
देवी बोलीं-॥४॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ ५ ॥

ओ दुष्ट! मैं अकेली ही हूँ। इस संसार में मेरे सिवा दूसरी कौन है? देख, ये मेरी ही विभूतियाँ हैं, अत: मुझ में ही प्रवेश कर रही हैं ॥ ५ ॥

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ ६ ॥

तदनन्तर ब्रह्माणी आदि समस्त देवियाँ अम्बिका देवी के शरीर में लीन हो गयीं। उस समय केवल अम्बिकादेवी ही रह गयीं ॥ ६ ॥

देव्युवाच॥ ७ ॥
देवी बोलीं- ॥ ७॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव॥ ८ ॥

मैं अपनी ऐश्वर्यशक्ति से अनेक रूपों में यहाँ उपस्थित हुई थी। उन सब रूपों को मैंने समेट लिया। अब अकेली ही युद्ध में खड़ी हूँ। तुम भी स्थिर हो जाओ॥८॥

ऋषिरुवाच॥ ९॥
ऋषि कहते हैं-॥ ९॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम्॥ १०॥

तदनन्तर देवी और शुम्भ दोनों में सब देवताओं तथा दानवों के देखते-देखते भयंकर युद्ध छिड़ गया॥ १० ॥

शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः।
तयोर्युद्धमभूद्धयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥११॥

बाणों की वर्षा तथा तीखे शस्त्रों एवं दारुण अस्त्रों के प्रहार के कारण उन दोनों का युद्ध सब लोगों के लिये बड़ा भयानक प्रतीत हुआ॥ ११ ॥

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ १२ ॥

उस समय अम्बिकादेवी ने जो सैकड़ों दिव्य अस्त्र छोड़े, उन्हें दैत्यराज शुम्भ ने उनके निवारक अस्त्रों द्वारा काट डाला ॥ १२ ॥

मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ १३॥

इसी प्रकार शुम्भ ने भी जो दिव्य अस्त्र चलाये; उन्हें परमेश्वरीने भयंकर हुंकार शब्द के उच्चारण आदि द्वारा खिलवाड़ में ही नष्ट कर डाला॥ १३॥

ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥ १४॥

तब उस असुर ने सैकड़ों बाणों से देवी को आच्छादित कर दिया। यह देख क्रोध में भरी हुई उन देवी ने भी बाण मारकर उसका धनुष काट डाला ॥ १४ ॥

छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥ १५॥

धनुष कट जाने पर फिर दैत्यराज ने शक्ति हाथ में ली, किंतु देवी ने चक्र से उसके हाथ की शक्ति को भी काट गिराया॥ १५ ॥

ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत्।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः॥ १६॥

तत्पश्चात् दैत्यों के स्वामी शुम्भने सौ चाँदवाली चमकती हुई ढाल और तलवार हाथ में ले उस समय देवी पर धावा किया॥ १६॥

तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥ १७॥

उसके आते ही चण्डिका ने अपने धनुष से छोड़े हुए तीखे बाणों द्वारा उसकी सूर्य- किरणों के समान उज्ज्वल ढाल और तलवार को तुरंत काट दिया॥ १७ ॥

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥ १८॥

फिर उस दैत्य के घोड़े और सारथि मारे गये, धनुष तो पहले ही कट चुका था, अब उसने अम्बिका को मारने के लिये उद्यत हो भयंकर मुद्गर हाथ में लिया॥ १८॥

चिच्छेदापतत्तस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥ १९॥

उसे आते देख देवी ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उसका मुद्गर भी काट डाला, तिसपर भी वह वेग से देवी की ओर झपटा॥ १९ ॥

स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ।॥ २० ॥

असुर मुक्का तानकर उस दैत्यराज ने देवी की छाती में मुक्का मारा, तब उन देवीने भी उसकी छाती में एक चाँटा जड़ दिया॥ २०॥

तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥ २१॥

देवी का थप्पड़ खाकर दैत्यराज शुम्भ पृथ्वी पर गिर पड़ा, किंतु पुनः सहसा पूर्ववत् उठकर खड़ा हो गया॥ २१ ॥

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥ २२॥

फिर वह उछला और देवी को ऊपर ले जाकर आकाश में खड़ा हो गया तब चण्डिका आकाश में भी बिना किसी आधार के ही शुम्भ के साथ युद्ध करने लगीं ॥ २२ ॥

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥ २३॥

उस समय दैत्य और चण्डिका आकाश में एक-दूसरे से लड़ने लगे। उनका वह युद्ध पहले सिद्ध और मुनियों को विस्मय में डालने वाला हुआ॥ २३ ॥

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह।

उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥ २४॥

फिर अम्बिका ने शुम्भ के साथ बहुत देरतक युद्ध करने के पश्चात् उसे उठाकर घुमाया और पृथ्वी पर पटक दिया॥ २४॥

स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥ २५ ॥

पटके जाने पर पृथ्वी पर आने के बाद वह दुष्टात्मा दैत्य पुनः चण्डिका का वध करने के लिये उनकी ओर बड़े वेग से दौड़ा॥ २५ ॥

तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥ २६ ॥

तब समस्त दैत्यों के राजा शुम्भ को अपनी ओर आते देख देवी ने त्रिशूल से उसकी छाती छेदकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया॥ २६ ॥

स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥ २७ ॥

देवी के शूल की धार से घायल होने पर उसके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह समुद्रों, द्वीपों तथा पर्वतों सहित समूची पृथ्वी को कँपाता हुआ भूमि पर गिर पड़ा॥ २७॥

ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥ २८॥

तदनन्तर उस दुरात्मा के मारे जाने पर सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न एवं पूर्ण स्वस्थ हो गया तथा आकाश स्वच्छ दिखायी देने लगा॥ २८॥

उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शर्मं ययुः।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥ २९ ॥

पहले जो उत्पात सूचक मेघ और उल्कापात होते थे, वे सब शान्त हो गये तथा उस दैत्य के मारे जाने पर नदियाँ भी ठीक मार्ग से बहने लगीं ॥ २९ ॥

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गर्धर्वा ललितं जगुः॥ ३० ॥

उस समय शुम्भ की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण देवताओं का हृदय हर्ष से भर गया और गन्धर्वगण मधुर गीत गाने लगे ॥ ३० ॥

अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ ३१ ॥

दूसरे गन्धर्व बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं । पवित्र वायु बहने लगी । सूर्य की प्रभा उत्तम हो गयी॥ ३१ ॥

जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ॥ ॐ ॥ ३२ ॥

अग्निशाला की बुझी हुई आग अपने-आप प्रज्वलित हो उठी तथा सम्पूर्ण दिशाओं के भयंकर शब्द शान्त हो गये॥ ३२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णि के मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवरधो नाम दशमोऽध्याय:॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'शुम्भ-वध' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १० ॥

श्री दुर्गासप्तशती पाठ ग्यारहवां अध्याय अर्थ सहित (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण) (एकादशोध्याय)

अगर आपके व्यापार में हानि हो रही है, पैसों का जाना रुक नहीं रहा है,किसी भी प्रकार से धन की हानि आपको हो रही हो,तो इस अध्याय का पाठ करना चाहिए। इसके प्रभाव से आपके अनावश्यक खर्चे बंद हो जाते है। और घर में सुख शांति का वास रहता है।

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

एकादशोऽध्यायः

देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति तथा देवी द्वारा देवताओं को वरदान

ध्यानम्

ॐ बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

मैं भुवनेश्वरी देवी का ध्यान करता हूँ । उनके श्रीअंगों की आभा प्रभातकाल के सूर्य के समान है और मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट है। वे उभरे हुए स्तनों और तीन नेत्रों से युक्त हैं । उनके मुख पर मुसकान की छटा छायी रहती है और हाथों में वरद, अंकुश, पाश एवं अभय-मुद्रा शोभा पाते हैं।

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १ ॥
ऋषि कहते हैं-॥ १ ॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्र
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्
विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥२॥

देवी के द्वारा वहाँ महादैत्यपति शुम्भ के मारे जाने पर इन्द्र आदि देवता अग्नि को आगे करके उन कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे। उस समय अभीष्ट की प्राप्ति होने से उनके मुखकमल दमक उठे थे और उनके प्रकाशसे दिशाएँ भी जगमगा उठी थीं ॥ २ ॥

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद जंचमवा
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥ ३॥

देवता बोले-शरणागत की पीड़ा दूर करने वाली देवि ! हम पर प्रसन्न होओ । सम्पूर्ण जगत् की माता! प्रसन्न होओ । विश्वेश्वरि! विश्वकी रक्षा करो । देवि! तुम्हीं चराचर जगत् की अधीश्वरी हो॥ ३ ॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्क्यवीर्ये ॥ ४॥

तुम इस जगत्का एकमात्र आधार हो; क्योंकि पृथ्वी रूप में तुम्हारी ही स्थिति है । देवि! तुम्हारा पराक्रम अलंघनीय है। तुम्हीं जलरूप में स्थित होकर सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो ॥ ४ ॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ५॥

तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो । इस विश्व की कारणभूता परा माया हो। देवि! तुमने इस समस्त जगत् को मोहित कर रखा है। तुम्हीं प्रसन्न होने पर इस पृथ्वीपर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो ॥ ५॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ६ ॥

देवि सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। जगत्में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जगदम्ब! एकमात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? तुम तो स्तवन करनेयोग्य पदार्थोंसे परे एवं परा वाणी हो ॥ ६ ॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिंप्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ७ ॥

जब तुम सर्वस्वरूपा देवी स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हो, तब इसी रूप में तुम्हारी स्तुति हो गयी। तुम्हारी स्तुति के लिये इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं?॥ ७॥

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

बुद्धिरूप से सब लोगों के हृदय में विराजमान रहने वाली तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ ८॥

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥

कला, काष्ठा आदि के रूप से क्रमश: परिणाम (अवस्था - परिवर्तन)- की ओर ले जानेवाली तथा विश्व का उपसंहार करने में समर्थ नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है॥ ९॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १० ॥

नारायणि! तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करने वाली मंगलमयी हो। कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रों वाली एवं गौरी हो । तुम्हें नमस्कार है॥ १० ॥

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ११॥

तुम सृष्टि, पालन और संहार की शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा सर्वगुणमयी हो। नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥ ११ ॥

शरणागतदीनातर्तपरित्राणपरायणे
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १२॥

शरण में आये हुए दीनों एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहने वाली तथा सबकी पीड़ा दूर करने वाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है ॥ १२ ॥

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि।
कौशाम्भ:क्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥

नारायणि! तुम ब्रह्माणी का रूप धारण करके हंसों से जुते हुए विमान पर बैठती तथा कुशमिश्रित जल छिड़कती रहती हो। तुम्हें नमस्कार है॥ १३ ॥

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १४॥

माहेश्वरीरूप से त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्प को धारण करनेवाली तथा महान् वृषभ की पीठ पर बैठने वाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ १४॥

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १५॥

मोरों और मुर्गो से घिरी रहने वाली तथा महाशक्ति धारण करने वाली कौमारी रूपधारिणी निष्पापे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥ १५॥

शङ्खचक्रगदाशाङ्कगृहीतपरमायुधे
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते।॥ १६॥

शंख, चक्र, गदा और शाङ्गधनुषरूप उत्तम आयुधों को धारण करने वाली वैष्णवी शक्ति रूपा नारायणि ! तुम प्रसन्न होओ। तुम्हें नमस्कार है ॥ १६ ॥

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोदधृतवसुंधरे।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १७॥

हाथ में भयानक महाचक्र लिये और दाढ़ों पर धरती को उठाये वाराहीरूपधारिणी कल्याणमयी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ १७ ॥

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे|
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १८॥

भयंकर नृसिंहरूप से दैत्यों के वध के लिये उद्योग करने वाली तथा त्रिभुवन की रक्षा में संलग्न रहने वाली नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ १८ ॥

किरीटिनि महावज्रे सहस्त्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १९॥

मस्तक पर किरीट और हाथ में महावज्र धारण करने वाली, सहस्त्र नेत्रों के कारण उद्दीप्त दिखायी देनेवाली और वृत्रासुर के प्राणों का अपहरण करने वाली इन्द्रशक्तिरूपा नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है ॥ १९॥

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २० ॥

शिवदूतीरूप से दैत्यों की महती सेना का संहार करने वाली, भयंकर रूप धारण तथा विकट गर्जना करने वाली नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २०॥

दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥

दाढ़ों के कारण विकराल मुखवाली मुण्डमाला से विभूषित मुण्डमर्दिनी चामुण्डारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार हैं ॥ २१ ॥

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे' ध्रुवे।
महारात्रि महाऽविद्ये' नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥

लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महा अविद्यारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २२ ॥

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते २३॥

मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठा), (ऐश्वर्यरूपा) बाभ्रवी (भूरे रंग की अथवा पार्वती), तामसी (महाकाली), नियता (संयमपरायणा) तथा ईशा (सबकी अधीश्वरी) रूपिणी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥ २३ ॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ २४॥

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयों से हमारी रक्षा करो; तुम्हें नमस्कार है॥ २४॥

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातू नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ २५॥

कात्यायनि ! यह तीन लोचनों से विभूषित तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकार के भयों से हमारी रक्षा करे। तुम्हें नमस्कार है॥ २५ ॥

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥

भद्रकाली! ज्वालाओं के कारण विकराल प्रतीत होने वाला, अत्यन्त भयंकर और समस्त असुरों का संहार करने वाला तुम्हारा त्रिशूल भय से हमें बचाये। तुम्हें नमस्कार है ॥ २६ ॥

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव॥ २७॥

देवि! जो अपनी ध्वनि से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके दैत्यों के तेज नष्ट किये देता है, वह तुम्हारा घण्टा हम लोगों की पापों से उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे माता अपने पुत्रों की बुरे कर्मों से रक्षा करती है। २७॥

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम्॥ २८॥

चण्डि के तुम्हारे हाथों में सुशोभित खड्ग, जो असुरों के रक्त और चर्बी से चर्चित है, हमारा मंगल करे। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं॥ २८॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ २९॥

देवि! तुम प्रसन्न होने पर सब रोगों को नष्ट कर देती हो और कुपित होने पर मनोवांछित सभी कामनाओं का नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरण में जा चुके हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरण में गये हुए मनुष्य दूसरों को शरण देनेवाले हो जाते हैं॥ २९ ॥

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्ति
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥ ३० ॥

देवि अम्बिके तुमने अपने स्वरूप को अनेक भागों में विभक्त करके नाना प्रकार के रूपों से जो इस समय इन धर्मद्रोही महादैत्यों का संहार किया है, वह सब दूसरी कौन कर सकती थी ? ॥ ३० ॥

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्॥ ३१॥

विद्याओं में, ज्ञानको प्रकाशित करने वाले शास्त्रों में तथा आदिवाक्यों (वेदों)-में तुम्हारे सिवा और किसका वर्णन है? तथा तुमको छोड़कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है, जो इस विश्व को अज्ञानमय घोर अन्धकार से परिपूर्ण ममतारूपी गढ़े में निरन्तर भटका रही हो ॥ ३१ ॥

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥ ३२ ॥

जहाँ राक्षस, जहाँ भयंकर विषवाले सर्प, जहाँ शत्रु, जहाँ लुटेरों की सेना और जहाँ दावानल हो, वहाँ तथा समुद्र के बीच में भी साथ रहकर तुम विश्वकी रक्षा करती हो ॥ ३२ ॥

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्॥
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥ ३३ ॥

विश्वेश्वरि! तुम विश्व का पालन करती हो । विश्वरूपा हो, इसलिये सम्पूर्ण विश्व को धारण करती हो। तुम भगवान् विश्वनाथ की भी वन्दनीया हो। जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्व को आश्रय देने वाले होते हैं॥ ३३॥

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशम नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥ ३४॥

देवि ! प्रसन्न होओ। जैसे इस समय असुरों का वध करके तुमने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओं के भय से बचाओ। सम्पूर्ण जगत् का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवों को शीघ्र दूर करो ॥ ३४॥

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥ ३५ ॥

देव्युवाच॥ ३६॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥ ३७॥

देवा ऊचुः॥ ३८ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि|
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ३९॥

देव्युवाच॥ ४० ॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ॥ ४१ ॥

जाता यशोदागर्भसम्भवा।
भारम ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ ४२ ॥

नन्दगोपगृहे

विश्वकी पीड़ा दूर करने वाली देवि! हम तुम्हारे चरणों पर पड़े हुए हैं, हमपर प्रसन्न होओ। त्रिलोकनिवासियोंकी पूजनीया परमेश्वरि! सब लोगों को वरदान दो॥ ३५ ॥

देवी बोलीं- ॥ ३६॥

देवताओ! मैं वर देनेको तैयार हूँ। तुम्हारे मन में जिसकी इच्छा हो, वह वर माँग लो। संसारके लिये उस उपकारक वरको में अवश्य दूँगी॥ ३७॥

देवता बोले-॥ ३८॥

सर्वेश्वरि ! तुम इसी प्रकार तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को शान्त करो और हमारे शत्रुओं का नाश करती रहो॥ ३९ ॥

देवी बोलीं- ॥४०॥

देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युग में शुम्भ और निशुम्भ नामके दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे ॥ ४१ ॥

तब मैं नन्दगोप के घर में उनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से अवतीर्ण हो विन्ध्याचल में जाकर रहूँगी और उक्त दोनों असुरोंका नाश करूँगी॥ ४२ ॥

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥ ३५ ॥

विश्व की पीड़ा दूर करने वाली देवि! हम तुम्हारे चरणों पर पड़े हुए हैं, हमपर प्रसन्न होओ। त्रिलोकनिवासियों की पूजनीया परमेश्वरि! सब लोगों को वरदान दो॥ ३५ ॥

देव्युवाच॥ ३६॥
देवी बोलीं- ॥ ३६॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥ ३७॥

देवताओ! मैं वर देने को तैयार हूँ। तुम्हारे मन में जिसकी इच्छा हो, वह वर माँग लो। संसारके लिये उस उपकारक वर को में अवश्य दूँगी॥ ३७॥

देवा ऊचुः॥ ३८ ॥
देवता बोले-॥ ३८॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि|
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ३९॥

सर्वेश्वरि ! तुम इसी प्रकार तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को शान्त करो और हमारे शत्रुओं का नाश करती रहो॥ ३९ ॥

देव्युवाच॥ ४० ॥
देवी बोलीं- ॥४०॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ॥ ४१ ॥

देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें युग में शुम्भ और निशुम्भ नाम के दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे ॥ ४१ ॥

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।भारम
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ ४२ ॥

तब मैं नन्दगोप के घर में उनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से अवतीर्ण हो विन्ध्याचल में जाकर रहूँगी और उक्त दोनों असुरों का नाश करूँगी॥ ४२ ॥

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ ४३॥

फिर अत्यन्त भयंकर रूप से पृथ्वी पर अवतार ले मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवों का वध करूँगी॥ ४३ ॥

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान्।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः॥४४॥

उन भयंकर महादैत्यों को भक्षण करते समय मेरे दाँत अनार के फूल की भाँति लाल हो जायँगे ॥ ४४॥

ततो मां देवताः स्वर्गे मत्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥ ४५ ॥

तब स्वर्ग में देवता और मत्यलोक में मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे ॥ ४५ ॥

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥ ४६ ॥

फिर जब पृथ्वी पर सौ वर्षों के लिये वर्षा रुक जायगी और पानी का अभाव हो जायगा, उस समय मुनियों के स्तवन करने पर मैं पृथ्वी पर अयोनिजा रूप में प्रकट होऊँगी॥ ४६ ॥

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥ ४७ ॥

और सौ नेत्रों से मुनियों को देखूँगी। अतः मनुष्य 'शताक्षी' इस नाम से मेरा कीर्तन करेंगे॥ ४७ ॥

ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ ४८॥

देवताओ! उस समय मैं अपने शरीर से उत्पन्न हुए शाकों द्वारा समस्त संसार का भरण-पोषण करूँगी। जब तक वर्षा नहीं होगी, तब तक वे शाक ही सबके प्राणों की रक्षा करेंगे॥ ४८॥

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥ ४९॥
दर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥ ५० ॥
रक्षांसि * भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥ ५१॥

इससे मेरा नाम 'दुर्गादेवी' के रूप से प्रसिद्ध होगा। फिर मैं जब भीमरूप धारण करके मुनियों की रक्षा के लिये हिमालय पर रहने वाले राक्षसों का भक्षण करूँगी, उस समय सब मुनि भक्ति से नतमस्तक होकर मेरी स्तुति करेंगे॥ ५०-५१॥

भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥ ५२ ॥

तब मेरा नाम 'भीमादेवी' के रूप में विख्यात होगा। जब अरुण नामक दैत्य तीनों लोकों में भारी उपद्रव मचायेगा ॥ ५२ ॥

तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥५३॥

तब मैं तीनों लोकों का हित करने के लिये छः पैरों वाले असंख्य भ्रमरों का रूप धारण करके उस महादैत्य का वध करूँगी॥ ५३॥

ऐसा करने के कारण पृथ्वीपर 'शाकम्भरी' के नाम से मेरी ख्याति होगी। उसी अवतार में मैं दुर्गम नामक महादैत्य का वध भी करूँगी ॥ ४९ ॥

भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥ ५४॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥ ॐ॥ ५५॥

उस समय सब लोग 'भ्रामरी' के नाम से चारों ओर मेरी स्तुति करेंगे। इस प्रकार जब-जब संसार में दानवी बाधा उपस्थित होगी, तब-तब अवतार लेकर मैं शत्रुओं का संहार करूँगी ॥ ५४-५५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या: स्तुतिनामैकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'देवीस्तुति' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ।॥ ११ ॥

श्री दुर्गासप्तशती पाठ का बारहवां अध्याय अर्थ सहित (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण) द्वादशोध्याय

इस अध्याय का पाठ करने से व्यक्ति को मान सम्मान की प्राप्ति होती है। इसके अलावा जिस व्यक्ति पर गलत दोषारोपण कर दिया जाता है,जिससे उसके सम्मान की हानि होती है तो ऐसी स्थिती से बचने के लिए दुर्गा सप्तशती के 12 वें अध्याय का पाठ करना चाहिए। रोगों से मुक्ति के लिए भी 12 वें अध्याय का पाठ करना असीम लाभकारी है। कोई भी ऐसा रोग जिससे आप बहुत सालो से दुखी है और डॉक्टर की दवाइयों का कोई असर नहीं हो रहा है। तो 12 वे अध्याय का पाठ आपको अवश्य करना चाहिए।

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

द्वादशोऽध्यायः देवी-चरित्रों के पाठ का माहात्म्य

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं

बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

मैं तीन नेत्रों वाली दुर्गादेवी का ध्यान करता हूँ, उनके श्रीअंगों की प्रभा बिजली के समान है। वे सिंह के कंधे पर बैठी हुई भयंकर प्रतीत होती हैं। हाथों में तलवार और ढाल लिये अनेक कन्याएँ उनकी सेवा में खड़ी हैं । वे अपने हाथों में चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए हैं। उनका स्वरूप अग्निमय है तथा वे माथे पर चन्द्रमा का मुकुट धारण करती हैं।

ॐ' देव्युवाच॥ १॥
देवी बोलीं- ॥ १ ॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ २ ॥

देवताओ जो एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन इन स्तुतियों से मेरा स्तवन करेगा, उसकी सारी बाधा मैं निश्चय ही दूर कर दूंगी॥ २ ॥

मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ३ ॥

जो मधुकैटभ का नाश, महिषासुर का वध तथा शुम्भ-निशुम्भ के संहार के प्रसंग का पाठ करेंगे॥ ३ ॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्॥४॥

तथा अष्टमी, चतुर्दशी और नवमी को भी जो एकाग्रचित्त हो भक्ति पूर्वक मेरे उत्तम माहात्म्य का श्रवण करेंगे॥ ४॥

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ५॥

उन्हें कोई पाप नहीं छू सकेगा। उनपर पापजनित आपत्तियाँ भी नहीं आयेंगी । उनके घर में कभी दरिद्रता नहीं होगी तथा उनको कभी प्रेमीजनों के विछोह का कष्ट भी नहीं भोगना पड़ेगा॥ ५॥

शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ६॥

इतना ही नहीं, उन्हें शत्रु से, लुटेरों से, राजा से, शस्त्र से, अग्नि से तथा जल की राशि से भी कभी भय नहीं होगा ॥ ६ ॥

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ ७॥

इसलिये सबको एकाग्रचित्त होकर भक्ति पूर्वक मेरे इस माहात्म्यको सदा पढ़ना और सुनना चाहिये । यह परम कल्याणकारक है॥ ७॥

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ८ ॥

मेरा माहात्म्य महामारीजनित समस्त उपद्रवों तथा आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकारके उत्पातोंको शान्त करने वाला है ॥ ८ ॥

यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम्॥ ९ ॥

मेरे जिस मन्दिर में प्रतिदिन विधिपूर्वक मेरे इस माहात्म्य का पाठ किया जाता है, उस स्थान को मैं कभी नहीं छोड़ती। वहाँ सदा ही मेरा सन्निधान बना रहता है॥ ९॥

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च॥ १० ॥

बलिदान, पूजा, होम तथा महोत्सव के अवसरों पर मेरे इस चरित्र का पूरा-पूरा पाठ और श्रवण करना चाहिये॥ १० ॥

जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम्।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वहिनहोमं तथा कृतम्॥ ११॥

ऐसा करने पर मनुष्य विधि को जानकर या बिना जाने भी मेरे लिये जो बलि, पूजा या होम आदि करेगा, उसे मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ ग्रहण करूँगी ॥ ११ ॥

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ १२ ॥
सर्वाबाधौविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ १३॥

शरत्काल में जो वार्षिक महापूजा की जाती है, उस अवसर पर जो मेरे इस माहात्म्य को भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह मनुष्य मेरे प्रसाद से सब बाधाओं से मुक्त तथा धन, धान्य एवं पुत्र से सम्पन्न होगा-इसमें तनिक भी संदेह नहीं है॥ १२-१३॥

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान्॥ १४॥

मेरे इस माहात्म्य, मेरे प्रादुर्भाव की सुन्दर कथाएँ तथा युद्ध में किये हुए मेरे पराक्रम सुनने से मनुष्य निर्भय हो जाता है। १४ ॥

रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥ १५ ॥

मेरे माहात्म्य का श्रवण करने वाले पुरुषों के शत्रु नष्ट हो जाते हैं, उन्हें कल्याण की प्राप्ति होती तथा उनका कुल आनन्दित रहता है॥ १५ ॥

शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥ १६ ॥

सर्वत्र शान्ति-कर्मे, बुरे स्वप्न दिखायी देने पर तथा ग्रहजनित भयंकर पीड़ा उपस्थित होने पर मेरा माहात्म्य श्रवण करना चाहिये॥ १६॥

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १७ ॥

इससे सब विघ्न तथा भयंकर ग्रह-पीड़ाएँ शान्त हो जाती हैं और मनुष्योंद्वारा देखा हुआ दुःस्वप्न शुभ स्वप्ने में परिवर्तित हो जाता है । १७ ॥

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥।

बालग्रहों से आक्रान्त हुए बालकों के लिये यह माहात्म्य शान्तिकारक है तथा मनुष्यों के संगठन में फूट होने पर यह अच्छी प्रकार मित्रता कराने वाला होता है॥ १८ ॥

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ १९ ॥

यह माहात्म्य समस्त दुराचारियों के बल का नाश कराने वाला है। इसके पाठमात्र से राक्षसों, भूतों और पिशाचों का नाश हो जाता है॥ १९ ॥

सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ २० ॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥ २१ ॥
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते ।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति॥ २२॥

मेरा यह सब माहात्म्य मेरे सामीप्य की प्राप्ति कराने वाला है। पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध आदि उत्तम सामग्रियों द्वारा पूजन करने से, ब्राह्मणों को भोजन कराने से, होम करने से, प्रतिदिन अभिषेक करने से, नाना प्रकार के अन्य भोगों का अर्पण करने से तथा दान देने आदि से एक वर्ष तक जो मेरी आराधना की जाती है और उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्र का एक बार श्रवण करने मात्र से हो जाती है। यह माहात्म्य श्रवण करने पर पापों को हर लेता और आरोग्य प्रदान करता है॥ २० - २२॥

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ २३॥

मेरे प्रादुर्भाव का कीर्तन समस्त भूतों से रक्षा करता है तथा मेरा युद्ध विषयक चरित्र दुष्ट दैत्यों का संहार करने वाला है॥ २३ ॥

तस्मिञ्छते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।
युष्पाभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभि: कृता: ॥ २४॥

इसके श्रवण करने पर मनुष्यों को शत्रु का भय नहीं रहता। देवताओ तुमने और ब्रह्मर्षियों ने जो मेरी स्तुतियाँ की हैं ॥ २४॥

ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः॥ २५ ॥

तथा ब्रह्माजी ने जो स्तुतियाँ की हैं, वे सभी कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं । वन में, सूने मार्ग में अथवा दावानल से घिर जाने पर ॥ २५ ॥

दस्युभि्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥ २६॥

निर्जन स्थान में, लुटेरों के दाव में पड़ जाने पर या शत्रुओं से पकड़े जाने पर अथवा जंगल में सिंह, व्याघ्र या जंगली हाथियों के पीछा करने पर ॥ २६ ॥

राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वर्यो बन्धगतोऽपि वा।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥ २७॥

कुपित राजा के आदेश से वध या बन्धन के स्थान में ले जाये जाने पर अथवा महासागर में नाव पर बैठने के बाद भारी तूफान से नाव के डगमग होने पर ॥ २७॥

पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा॥ २८॥

और अत्यन्त भयंकर युद्ध में शस्त्रों का प्रहार होने पर अथवा वेदना से पीड़ित होने पर, किं बहुना, सभी भयानक बाधाओं के उपस्थित होनेपर ॥ २८॥

स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात्।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥ २९॥
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम॥ ३० ॥

जो मेरे इस चरित्र का स्मरण करता है, वह मनुष्य संकटसे मुक्त हो जाता है । मेरे प्रभाव से सिंह आदि हिंसक जन्तु नष्ट हो जाते हैं तथा लुटेरे और शत्रु भी मेरे चरित्र का स्मरण करने वाले पुरुष से दूर भागते हैं॥ २९-३० ॥

ऋषिरुवाच॥ ३१॥
ऋषि कहते हैं-॥३१॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ ३२ ॥
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ।
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा॥ ३३ ॥
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥ ३४॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः॥ ३५॥

यों कहकर प्रचण्ड पराक्रम वाली भगवती चण्डिका सब देवताओं के देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं फिर समस्त देवता भी शत्रुओं के मारे जाने से निर्भय हो पहले की ही भाँति यज्ञभाग का उपभोग करते हुए अपने-अपने अधिकार का पालन करने लगे। संसार का विध्वंस करने वाले महाभयंकर अतुल-पराक्रमी देवशत्रु शुम्भ तथा महाबली निशुम्भ के युद्धमें देवी द्वारा मारे जाने पर शेष दैत्य पाताललोक में चले आये॥ ३२-३५ ॥

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ ३६ ॥

राजन इस प्रकार भगवती अम्बिकादेवी नित्य होती हुई भी पुन:-पुन: प्रकट होकर जगत् की रक्षा करती हैं ॥ ३६ ॥

तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति॥ ३७॥

वे ही इस विश्व को मोहित करतीं, वे ही जगत् को जन्म देतीं तथा वे ही प्रार्थना करने पर संतुष्ट हो विज्ञान एवं समृद्धि प्रदान करती हैं ॥ ३७ ॥

व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ ३८॥

राजन महाप्रलय के समय महामारी का स्वरूप धारण करने वाली वे महाकाली ही इस समस्त ब्रह्माण्ड में ॥ ३८ ॥

सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ ३९ ॥

वे ही समय-समय पर महामारी होती और वे ही स्वयं अजन्मा व्याप्त हैं। होती हुई भी सृष्टि के रूप में प्रकट होती हैं। वे सनातनी देवी ही समयानुसार सम्पूर्ण भूतों की रक्षा करती हैं॥ ३९ ॥

भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे।
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते॥ ४० ॥

मनुष्यों के अभ्युदय के समय वे ही घर में लक्ष्मी के रूप में स्थित हो उन्नति प्रदान करती हैं और वे ही अभाव के समय दरिद्रता बनकर विनाश का कारण होती हैं॥ ४० ॥

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम्॥ ॐ॥ ४१ ॥

पुष्प, धूप और गन्ध आदि से पूजन करके उनकी स्तुति करने पर वे धन. पुत्र, धार्मिक बुद्धि तथा उत्तम गति प्रदान करती हैं। ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिनाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय पुराण में सारवर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'फलस्तुति' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२ ॥

श्री दुर्गासप्तशती पाठ **13** अध्याय हिन्दी अर्थ सहित (हिंदी अनुवाद सहित सम्पूर्ण) (त्रयोदशोध्याय)

तेहरवे अध्याय का पाठ माँ भगवती की भक्ति प्रदान करता है। किसी भी साधना के बाद माँ की पूर्ण भक्ति के लिए इस अध्याय का पाठ अति महत्वपूर्ण है। किसी विशेष मनोकामनाओ को पूर्ण करने के लिए,किसी भी इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए,इस अध्याय का पाठ अत्यंत प्रभावी माना गया है।

।।ॐ नमश्चण्डिकायै।।

त्रयोदशोऽध्यायः सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान

ध्यानम्

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।

पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥

जो उदयकाल के सूर्यमण्डल की-सी कान्ति धारण करने वाली हैं, जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं तथा जो अपने हाथों में पाश, अंकुश, वर एवं अभय की मुद्रा धारण किये रहती हैं, उन शिवादेवी का मैं ध्यान करता हूँ।

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥
ऋषि कहते हैं-॥ १॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ २ ॥

राजन इस प्रकार मैंने तुमसे देवी के उत्तम माहात्म्य का वर्णन किया जो इस जगत् को धारण करती हैं, उन देवी का ऐसा ही प्रभाव है ॥ २ ॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥ ३ ॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥ ४ ॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ५ ॥

वे ही विद्या (ज्ञान) उत्पन्न करती हैं। भगवान विष्णु की मायास्वरूपा उन भगवती के द्वारा ही तुम, ये वैश्य तथा अन्यान्य विवेकी जन मोहित होते हैं, मोहित हुए हैं तथा आगे भी मोहित होंगे। महाराज! तुम उन्हीं परमेश्वरी की शरण में जाओ ॥ ३-४॥

आराधना करने पर वे ही मनुष्यों को भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच॥ ६ ॥
मार्कण्डेयजी कहते हैं-॥ ६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः॥ ७ ॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च॥ ८ ॥

क्रौष्टुकिजी! मेधामुनि के ये वचन सुनकर राजा सुरथ ने उत्तम व्रत का पालन करने वाले उन महाभाग महर्षि को प्रणाम किया। वे अत्यन्त ममता और राज्यापहरणसे बहुत खिन्न हो चुके थे॥ ७-८॥

जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः॥९ ॥

महामुने इसलिये विरक्त होकर वे राजा तथा वैश्य तत्काल तपस्या को चले गये और वे जगदम्बा के दर्शन के लिये नदी के तटपर रहकर तपस्या करने लगे॥ ९॥

स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्ति महीमयीम् ॥ १० ॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ।॥ ११॥

वे वैश्य उत्तम देवीसूक्त का जप करते हुए तपस्या में प्रवृत्त हुए। वे दोनों नदी के तटपर देवी की मिट्टी की मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप और हवन आदि के द्वारा उनकी आराधना करने लगे। उन्होंने पहले तो आहार को धीरे-धीरे कम किया; फिर बिलकुल निराहार रहकर देवी में ही मन लगाये एकाग्रता पूर्वक उनका चिन्तन आरम्भ किया॥ १०-११ ॥

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ १२ ॥

वे दोनों अपने शरीर के रक्त से प्रोक्षित बलि देते हुए लगातार तीन वर्ष तक संयमपूर्वक आराधना करते रहे ॥ १२॥

परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ १३ ॥
इस पर प्रसन्न होकर जगत् को धारण करने वाली चण्डिकादेवी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा ॥ १३ ॥

देव्युवाच॥ १४॥
देवी बोलीं-॥ १४॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ १५॥

राजन तथा अपने कुल को आनन्दित करने वाले वैश्य तुमलोग जिस वस्तु की अभिलाषा रखते हो, वह मुझसे माँगो। मैं संतुष्ट हूँ, अत: तुम्हें वह सब कुछ दूँगी॥ १५॥

मार्कण्डेय उवाच॥ १६ ॥
मार्कण्डेयजी कहते हैं-॥ १६॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ १७ ॥

तब राजा ने दूसरे जन्म में नष्ट न होने वाला राज्य माँगा तथा इस जन्में भी शत्रुओं की सेना को बलपूर्वक नष्ट करके पुन: अपना राज्य प्राप्त कर लेनेका वरदान माँगा॥ १७ ॥

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं व्रे निर्विण्णमानसः।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १८॥

वैश्य का चित्त संसार की ओर से खिन्न एवं विरक्त हो चुका था और वे बड़े बुद्धिमान थे; अत: उस समय उन्होंने तो ममता और अहंतारूप आसक्ति का नाश करने वाला ज्ञान माँगा॥ १८ ॥

देव्युवाच॥ १९॥
देवी बोलीं-॥१९॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान्॥ २० ॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ २१ ॥

राजन तुम थोड़े ही दिनों में शत्रुओं को मारकर अपना राज्य प्राप्त कर लोगे। अब वहाँ तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा॥ २०-२१ ॥

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वत:॥ २२॥

सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति॥ २३॥

फिर मृत्यु के पश्चात् तुम भगवान् विवस्वान् (सूर्य)-के अंश से जन्म लेकर इस पृथ्वी पर सावर्णिक मनु के नाम से विख्यात होओगे ॥ २२-२३ ॥

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥ २४॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ २५ ॥

वैश्यवर्य तुमने भी जिस वर को मुझसे प्राप्त करने की इच्छा की है, उसे देती हूँ। तुम्हें मोक्ष के लिये ज्ञान प्राप्त होगा॥ २४-२५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ २६॥
मार्कण्डेयजी कहते हैं- ॥ २६॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ २७॥
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ २८॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः॥ २९ ॥

मनोवांछित वरदान देकर तथा उनके द्वारा भक्तिपूर्वक अपनी स्तुति सुनकर देवी अम्बिका तत्काल अन्तर्धान हो गयीं। इस तरह देवी से वरदान पाकर क्षत्रियों में श्रेष्ठ सुरथ सूर्य से जन्म ले सावर्णि नामक मनु होंगे ॥ २७-२९ ॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः॥ क्लीं ॐ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथ-वैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत देवीमाहात्म्य में 'सुरथ और वैश्य को वरदान' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३ ॥

श्रीदुर्गासप्तशती पूर्ण

जय माता जी की।